दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2500 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 29 अंक नं० 8

अध्यात्म-पद

[राग-जंगला]

मैं निज आतम कब ध्याऊंगा ॥

रागादिक परिणाम त्याग कै, समता सौं लौ लगाऊंगा ।।मैं ।।1 ॥

मन वच काय जोग थिर करकै, ज्ञान समाधि लगाऊंगा।
कब हौं क्षपक श्रेणि चढि ध्याऊं, चारित मोह नशाऊंगा ।।मैं ।।2 ॥

चारों करम घातिया हन करि, परमातम पद पाऊंगा।
ज्ञान दरश सुख बल भंडारा, चार अघाति बहाऊंगा ।।मैं ।।3 ॥

परम निरंजन सिद्ध शुद्ध पद, परमानंद कहाऊंगा।
'द्यानत' यह सम्पति जब पाऊं, बहुरि न जग में आऊंगा ।।मैं ।।4 ॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

दिसम्बर : 1973] वार्षिक मूल्य 4) रुपये (344) एक अंक 35 पैसा [मार्गशीर्ष : 2500

(श्री भगवान महावीर 2500 वाँ निर्वाण महोत्सव अंतर्गत)

श्री महावीर-कुन्दकुन्द परमागम मंदिर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

भारतवर्ष में अद्वितीय एवं भव्य श्री महावीर-कुन्दकुन्द परमागम मंदिर का निर्माण सोनगढ़ में हुआ है; इसमें विराजमान होनेवाले भगवान महावीर दिगम्बर जिनबिम्ब के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव तथा श्री परमागम मंदिर के उद्घाटन की व्यवस्था लिये बृहद् आयोजन सहित तारीख 8से 9 दिसम्बर 1973 को सोनगढ़ में मीटिंग हुई थी। बहुत दूर-दूर से लगभग 200 सदस्य मीटिंग में भाग लेने हेतु पधारे थे। सबका अतीव उत्साह था। उक्त महोत्सव फाल्गुन शुक्ला 5, बुधवार दिनांक 26-2-74 से फाल्गुन शुक्ला 13, बुधवार दिनांक 6-3-74 तक मनाने का निर्णय हुआ। महोत्सव की तैयारी के लिये 40 कमेटियों का निर्माण किया गया है। महोत्सव की तैयारियां बहुत ही जोर-शोर से चल रही हैं। दूर-दूर प्रदेशों से हजारों की संख्या में दर्शनार्थियों के आने की संभावना है।

व्यवस्था-समिति के निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गये हैं—

संरक्षक	श्री रामजीभाई माणेकचंद दोशी
अध्यक्ष	श्री नवनीतलाल चुन्नीलाल जवेरी,
उपाध्यक्ष	श्री बाबूभाई चुन्नीलाल महेता,
	श्री खीमचंद जेठालाल शेठ
	श्री पोपटलाल मोहनलाल वोरा,
	श्री भगवानदास शोभालाल सेठ
	श्री लालचंद अमरचंद मोदी
	श्री रतीलाल मोहनलाल घीया
	श्री हिम्मतलाल हरगोविन्ददास
मंत्री	श्री नेमीचंद पाटनी
संयुक्त मंत्री	श्री चिमनलाल ठाकरशी मोदी
	श्री धन्यकुमारजी बेलोकर
	श्री मोहनलाल केशवलाल
	श्री शशिकांत मनसुखलाल
कोषाध्यक्ष	श्री रमणीकलाल जेठालाल शेठ

—नेमीचंद पाटनी, मंत्री
प्रतिष्ठा-महोत्सव-समिति

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

दिसम्बर : 1973 ☆ मार्गशीर्ष : वीर नि० सं० 2500, वर्ष 29 वाँ ☆ अंक : 8

महावीर प्रभु के मार्ग की प्रभावना कैसे हो ?

अहिंसा.... अनेकांत.... अपरिग्रह

प्रश्न—वर्तमान में श्री महावीर स्वामी के मोक्षगमन का 2500 वाँ वर्ष चल रहा है, तो महावीर प्रभु के मार्ग की प्रभावना कैसे हो ?

उत्तर—अहिंसा, अनेकांत और अपरिग्रहभाव द्वारा महावीर प्रभु के मार्ग की प्रभावना होती है।

प्रश्न—महावीर प्रभु के मार्ग की अहिंसा कैसी है ?

उत्तर—भगवान द्वारा कहा गया जीव-अजीव का स्वतंत्र भिन्न स्वरूप जानकर भेदज्ञान एवं वीतरागता प्रगट करना, वह भगवान के मार्ग की सच्ची अहिंसा है; जिसने ऐसी अहिंसा की, उसने मिथ्यात्व या रागादि द्वारा आत्मा के चैतन्यभाव का घात नहीं किया, वही सच्ची अहिंसा है। जहाँ ऐसी वीतराग अहिंसा का भाव हो, वहाँ परजीव को मारने की हिंसावृत्ति नहीं होती। ऐसे अहिंसाधर्म की पहिचान और प्रचार द्वारा भगवान के मोक्ष का ढाई हजारवाँ वर्ष मनाना योग्य है। अहा, वीरप्रभु की कही हुई सूक्ष्म अहिंसा कैसी अद्भुत-अलौकिक है, उसकी जगत को खबर नहीं है। ऐसे लोकोत्तर अहिंसा-धर्म का प्रचार करने योग्य है; उसमें किसी भी जैन का विरोध नहीं हो सकता।

प्रश्न—महावीर भगवान के कहे हुए अनेकांत धर्म का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—एक ही वस्तु में अपने अनंत धर्मों का अस्तित्व और पररूप से उसका असत्पना—ऐसे अनेकांतरूप वस्तुस्वरूप है, अर्थात् प्रत्येक वस्तु की अपने स्वभाव से पूर्णता है, उसमें किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है। वस्तु स्वयं ही अपने स्वभावधर्म से द्रव्य-पर्यायरूप है, नित्य-अनित्यरूप है, सत्-असत् रूप है। अनेकांत स्वभाववाली ऐसी वस्तु में दूसरा कोई कुछ भी करे-यह बात महावीर भगवान के अनेकांत मार्ग में नहीं रहती। महावीर भगवान ने तो अनेकांत द्वारा प्रत्येक जीव-अजीव वस्तु की अन्य समस्त वस्तुओं से भिन्नता और अपने स्वरूप से परिपूर्णता बतलायी है। ऐसे वस्तुस्वरूप को पहिचानना, वह अनेकांत का प्रचार है। ऐसे अनेकांत स्वरूप की पहिचान द्वारा पर से भिन्नता जानकर जीव अपने स्वरूप के सन्मुख होता है, वह अनेकांत का फल है, वह महावीर भगवान का मार्ग है। भगवान के निर्वाण के इस ढाई हजारवें वर्ष में ऐसे अनेकांतरूप जैनमार्ग की प्रभावना करनेयोग्य है, उसमें किसी भी जैन को आपत्ति नहीं हो सकती।

अनेकांत द्वारा वस्तु के सर्व स्वभावों को जानने पर जीवादि तत्त्वों का तथा सम्यग्दर्शनादि का सच्चा ज्ञान होता है और उनके संबंध में विपरीत मान्यताएँ दूर हो जाती हैं। ऐसा सम्यक् तत्त्वार्थश्रद्धान, वह जैनधर्म का मूल है और वही महावीर प्रभु के मार्ग की सच्ची पहिचान है, उसी के द्वारा जीव का कल्याण होता है, इसलिये अनेकांत मार्ग द्वारा जगत में तत्त्वज्ञान का प्रचार करनेयोग्य है।

प्रश्न—महावीर प्रभु के मार्ग में अपरिग्रहवाद कैसा है ?

उत्तर—जीव या अजीव, स्व या पर, प्रत्येक वस्तु अपने अनंत गुणस्वरूप से परिपूर्ण है और अन्य सबसे सर्वथा भिन्न है। इसप्रकार ज्ञान-आनंदमय अपने परिपूर्ण स्वरूप को जानना और उसमें पर के या राग के किसी

भी अंश का ग्रहण न करना; अर्थात् परद्रव्य की या परभाव को पकड़ न रखना, उसमें आत्मबुद्धि नहीं करना, वही महावीर प्रभु के मार्ग में सच्चा अपरिग्रहपना है। पर के या राग के किसी भी अंश से जो अपने को धर्म का लाभ होना माने, उसके भाव में पर की पकड़रूप परिग्रह है; भगवान के अपरिग्रहवाद की उसे खबर नहीं है। जिससे अपने को लाभ माने, उसमें ममत्व रहता ही है, और ममत्वबुद्धि ही परिग्रह है। अपना पूर्ण आत्मवैभव जिसे दृष्टिगोचर न हो, वही दूसरों से कुछ लेने की बुद्धि करता है और पर में से लाभ लेने की बुद्धि ही परिग्रह का मूल है। भगवान महावीर ने प्रत्येक आत्मा का संपूर्ण ज्ञानवैभव आत्मा में ही बतलाया है; ऐसे अपने पूर्ण आत्मवैभव को देखनेवाला जीव अन्य के पास से कुछ भी लेने की बुद्धि नहीं करता; इसलिये उसे पर की ममतारहित अपरिग्रहपना प्रगट होता है। राग के किसी अंश को भी वह ज्ञान में नहीं पकड़ता, राग के अंश से ज्ञान को लाभ होना नहीं मानता, इसलिये उसके ज्ञान में राग का भी परिग्रह नहीं है। इसप्रकार ज्ञान स्वयं ही पर के परिग्रह से रहित होने के कारण अपरिग्रही है; और ऐसा अपरिग्रहत्व ही भगवान का मार्ग है।

इसप्रकार भगवान के मार्ग में अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रहत्व–यह तीनों एक साथ हैं, सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र भी उसमें समा जाते हैं।

इसप्रकार अहिंसा, अनेकांत और अपरिग्रहवाद के प्रचार द्वारा महावीर भगवान के मार्ग की प्रभावना करने जैसी है, और यही भगवान के निर्वाण के 2500वें वर्ष का महोत्सव है। ऐसे महोत्सव में किसी भी जैन का विरोध हो नहीं सकता। इसमें तो सब जैन एकमत होकर कहेंगे कि—

जय महावीर!

— साधक, जगत की विभूतियों के आश्रय से नहीं जीता; परंतु जगत की विभूतियाँ साधक का आश्रय करने आती हैं। साधक महान है, जगत की विभूतियाँ महान नहीं हैं। अहा, चैतन्य की अद्भुत विभूति के समक्ष जगत की विभूति तो बिल्कुल तुच्छ भासित होती है।

चैतन्य के अनंत गंभीर भावों से भरपूर वीरप्रभु का अनेकांत शासन

अहा, आत्मा का अलौकिक स्वरूप अनेकांत-ज्ञान द्वारा ही प्रसिद्ध होता है—अनुभव में आता है। सर्वज्ञभगवान के जिनशासन को अर्थात् अनेकांतमय वस्तुस्वरूप को सम्यग्ज्ञानी ही जानता है। वीरप्रभु का अनेकांत-शासन किसी अद्भुत परम गंभीरता से भरपूर है। किसी भी पक्ष से उसका निर्णय करते हुए ज्ञान पर से नास्तिपना करके, अंतर में अनंत गुणों से भरपूर स्वभाव की अस्ति में प्रविष्ट हो जाता है, अर्थात् उसका शुद्धतारूप परिणमन होता है—यही आत्मा को साधने की रीति है, यही मोक्षमार्ग है, और यही अरिहंतमार्ग की उपासना है।

पुनश्च, एक साथ वर्तते हुए पुरुषार्थ, नियति आदि पाँचों समवायों का सच्चा निर्णय उसी को होता है कि जो अनेकांत ज्ञानस्वभाव के सन्मुख होकर उसरूप अपने को अनुभवता है। ज्ञानमय अनेकांत की कोई अद्भुत शक्ति है! भाई, एकबार तू ज्ञानस्वभावी आत्मा का निर्णय कर तो उसमें सब आ जायेगा। अनेकांतमय ज्ञान का अनुभव, वह 'अमृत' है; अमृत ऐसी मोक्षदशा का वह कारण है।

[समयसार के परिशिष्ट में अनेकांतमय ज्ञान का वर्णन चलता है।]

'ज्ञानमात्र आत्मा है', उसके अनुभव में अनंत गुणों के निर्मल परिणमन का स्वाद समाया हुआ है। ज्ञानमात्र वस्तु को अनेकांत द्वारा पहिचाननेवाला जीव उस ज्ञानमात्रभाव की रागादि से भिन्न देखता है और अपने अनंत गुण के निर्मल परिणमन से अभेद देखता है।—इस प्रकार धर्मी के अनुभव में आत्मवस्तु स्वयमेव अनेकांतरूप से प्रकाशित होती है और उसी वस्तु का सर्वज्ञदेव ने उपदेश दिया है। अज्ञानी को ज्ञानमात्र वस्तु अनेकांतरूप से प्रसिद्ध नहीं है,

अनेकांतमय ज्ञानवस्तु को वह जानता नहीं है, इसलिये ऐसे जीव को अनेकांतमय आत्मवस्तु की पहिचान कराने के लिये अरिहंत भगवान ने अनेकांत द्वारा उसका उपदेश दिया है।

मोह को नष्ट करने के लिये अरिहंतदेव ने जिस अमोघ साधन का उपदेश दिया, वह अनेकांत है।

जगत में जीवरूप और अजीवरूप अनंत पदार्थ हैं; वे सब अपने-अपने स्वरूप से सत् हैं और अन्य के स्वरूप से सत् नहीं हैं—असत् हैं। उनमें यह ज्ञानमात्र अपनी आत्मवस्तु है, वह अपने रूप से सत् है, और अन्य परपदार्थों के रूप से असत् है। इसप्रकार आत्मवस्तु प्रसिद्ध होती है। जिसप्रकार आत्मा स्व-रूप से है, उसीप्रकार यदि पररूप से भी हो तो उसके स्वरूप का ही निर्णय नहीं हो सकता, इसलिये पर से भिन्न उसका अनुभव ही नहीं हो सकता। आत्मा अपने चेतन गुण-पर्यायोंरूप से परिणमित होता है, उसीप्रकार यदि जड़ के या पर के गुण-पर्यायरूप से भी वह परिणमित हो तो आत्मा का कोई स्वरूप ही सिद्ध नहीं हो सकता। परंतु ज्ञानमात्र आत्मवस्तु अपने ज्ञान के साथ तन्मय वर्तते हुए आत्मा के अनंत धर्मों के साथ परिणमित होती है, और पर से भिन्न परिणमित होती है—इसप्रकार अपने ही स्वरूप से आत्मा अनेकांतस्वरूप प्रकाशित होता है। अनेकांत द्वारा ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा को अनुभवना वह भगवान अरिहंतदेव का अमोघ शासन है, वह मोह को नष्ट करके भगवान आत्मा को सत्यस्वरूप से प्रसिद्ध करता है।

ज्ञान का अनुभव ही अरिहंतमार्ग की उपासना है

अहा, वस्तुस्वरूप कोई अलौकिक है! वह अनेकांतज्ञान द्वारा ही प्रसिद्ध होता है—अनुभव में आता है। अहा, ज्ञानमात्र चैतन्यभाव को लक्ष में लेते हुए तो संपूर्ण चैतन्यभगवान लक्ष्यरूप से प्रसिद्ध होता है। ऐसे आत्मा को जानने से परभावों से भिन्न ज्ञान का परिणमन हुआ वही सच्चा वैराग्य है; उस ज्ञान में परम अनाकुलतारूप आनंद भी है, उसमें पवित्रता भी है, उसमें इंद्रियों से परे ऐसा अतीन्द्रियपना है—स्वसंवेदन प्रत्यक्षपना है—इसप्रकार अनंत चैतन्यधर्म एकसाथ ज्ञानभावरूप परिणमित हो रहे हैं।—यही अनेकांत है; और यही सर्वज्ञ भगवान का उपदेश अर्थात् जिनशासन है। ऐसे अनेकांतमय वस्तुस्वरूप को सम्यग्ज्ञानी ही जानते हैं। अहा, वीरप्रभु का अनेकांतशासन किसी अद्भुत परम गंभीरता से

भरपूर है। किसी भी पक्ष से उसका निर्णय करते हुए ज्ञान पर से नास्तिपना करके, अंतर में अनंत गुणों से भरपूर स्वभाव की अस्ति में प्रविष्ट होता है अर्थात् उसका शुद्धतारूप परिणमन होता है।—यही आत्मा को साधने की रीति है, यही मोक्षमार्ग है और यही अरिहंत मार्ग की उपासना है।

अनेकांत की अद्भुत शक्ति!

अरिहंतदेव के बतलाये हुए अनेकांतस्वरूप आत्मा को जानने से उसमें स्वभाव का, पुरुषार्थ का, नियति का, स्वकाल का और कर्म के अभावरूप निमित्त का—इसप्रकार एकसाथ मोक्ष के पाँचों समवाय का निर्णय हो जाता है। जब ज्ञानमात्र आत्मवस्तु का निर्णय करके ज्ञान स्वयं ज्ञानरूप होकर परिणमित हुआ और अन्य मिथ्यात्वादि भावरूप परिणमित नहीं हुआ, तब ज्ञान का जैसा स्वभाव था, वैसा पर्याय में निश्चित हुआ; पर्याय स्वसन्मुख पुरुषार्थरूप परिणमित हुई; स्वकाल में उसे सम्यक्त्वादि शुद्ध पर्यायों का क्रम था, वह प्रारंभ हुआ; उसके ज्ञानपरिणमन में कर्म का अभाव वर्तता है और वहाँ उसे देव-गुरु आदि योग्य निमित्त होते हैं, विपरीत निमित्त नहीं होते;—इसप्रकार एक साथ वर्तते हुए पाँचों का सच्चा निर्णय उसी को होता है। कि जो अनेकांतमय ज्ञानस्वभाव के सन्मुख होकर उसरूप अपने को अनुभवता है। ज्ञानमय अनेकांत की कोई अद्भुत शक्ति है! ज्ञानमात्र आत्मवस्तु को स्वीकार किये बिना पुरुषार्थ का, स्वभाव का, मोक्ष का, अरिहंत का अथवा नियति आदि सच्चा स्वीकार नहीं हो सकता। भाई! एकबार तू ज्ञानस्वभावी आत्मा का निर्णय तो कर, उसमें सब कुछ आ जायेगा। ज्ञानमात्र भाव में आत्मा के सर्व धर्म अस्तिरूप हैं, और समस्त परपदार्थों से उसको नास्तिपना है।—उसमें पुरुषार्थ आदि अनंत स्वधर्मों का समावेश हो जाता है। धर्मी के ज्ञान-अनुभव में वे सब अभेदरूप से समा जाते हैं। ऐसे अनेकांतमय ज्ञान का अनुभव वह 'अमृत' है—अमृत-अमर ऐसी मोक्षदशा का वह कारण है। अनेकांत की शक्ति अद्वितीय है।

अनेकांत-अमृत वह आत्मा का जीवन है

अहो, ज्ञान लक्षण आत्मा को उसके सच्चे स्वरूप में प्रसिद्ध करता है, वह कोई दोष (अव्याप्ति या अतिव्याप्ति) नहीं रहने देता; अनंत गुणों का परिणमन ज्ञानभाव में समाया है, परंतु उसमें पर का कोई अंश या विकार का कोई अंश नहीं आता। ज्ञान का जो स्वरूप है, उसे

अज्ञानी नहीं जानता, और जो ज्ञान का स्वरूप नहीं है, उसे वह ज्ञान का स्वरूप मानता है; ऐसा अज्ञानी-एकांतवादी जीव पर से भिन्न ज्ञानरूप अपना अनुभव नहीं करता हुआ, और अपने को पररूप मानकर अज्ञानभावरूप ही अपने को अनुभवता हुआ संसार में भटकता है और मोह से दुःखी होता है। ऐसे जीवों को अरिहंतदेव का शासन अनेकांत द्वारा उबारता है; इसलिये अनेकांत, वह अमर जीवन देनेवाला अमृत है।

अहा, अनेकांत का प्रकाशन करके अरिहंतदेव ने महान उपकार किया है।

अरिहंतदेव ने ऐसा वस्तुस्वरूप बतलाया है कि हे जीव! तेरा अस्तित्व ज्ञानस्वरूप से है, परंतु ज्ञान से भिन्न ऐसे परज्ञेयोंरूप से तेरा अस्तित्व नहीं है, और तुझमें किन्हीं परज्ञेयों का प्रवेश नहीं है। परज्ञेयों को जानते हुए भी तू अपने को ज्ञानरूप देख; ज्ञेयरूप न देख। तेरी ज्ञानसत्ता स्वतंत्र जीवंत है; उसके बदले उसे ज्ञेयरूप मानकर तू अपनी स्वाधीन सत्ता का नाश न कर। साथ में ज्ञात होनेवाले परज्ञेय, सो मैं हूँ—ऐसा अनुभवनेवाले अज्ञानी को ज्ञेय से भिन्न ऐसे ज्ञानरूप अपना अस्तित्व वेदन में नहीं आता; इसलिये उसकी मिथ्या श्रद्धा में आत्मतत्त्व नाश को प्राप्त होता। परंतु अनेकांत का स्वरूप उसे सत्यस्वरूप में प्रकाशित करके जीवंत रखता है। अहो, अनेकांत तो आत्मा का जीवन है। मोक्षमार्गी जीव अनेकांत द्वारा आत्मा को जानकर मोक्ष को साधता है। उसका स्वरूप बतलाकर अरिहंतदेव ने तथा वीतरागी संतों ने जगत का महान उपकार किया है। अनेकांत का सच्चा स्वरूप जाने, उसे स्व-पर का भेदज्ञान हुए बिना नहीं रहता; और भेदज्ञान हो, उसे मोक्ष हुए बिना नहीं रहता। इसप्रकार मोक्ष के मार्ग में अनेकांत अपने को दृढ़रूप से स्थापित करता है।

धर्मी का ज्ञान स्वयमेव अनेकांतरूप से प्रकाशित होता है।

अनेकांत द्वारा आत्मस्वरूप को लक्ष में लेकर जो जीव परिणमित हुआ, उस जीव को ज्ञान का ज्ञानपरिणमन हुआ। उस ज्ञानपरिणमन में रागादि का अभाव है, जड़ का अभाव है, परंतु आत्मा के आनंदादि अनंत धर्मों का उसमें अभाव नहीं है, उन अनंत धर्मों का सम्यक्परिणमन तो ज्ञान के साथ ही है। श्रद्धारूप से-आनंदरूप से-वीतरागतारूप से ज्ञान का ही अनुभव होता है; वे कोई कहीं ज्ञान से भिन्न नहीं हैं। इसलिये ज्ञान ही स्वयमेव अनेकांतरूप प्रकाशमान होता है।

ज्ञान के अनुभव में अपूर्व आत्मलक्ष्मी की प्राप्ति; अनेकांत मार्ग का वचन

ज्ञानरूप प्रकाशित होनेवाला और ज्ञानरूप से अनुभव में आनेवाला, सो मैं हूँ। ज्ञान से भिन्नरूप ज्ञात होनेवाले-अनुभव में आनेवाले कोई भाव, सो मैं नहीं हूँ।—इसप्रकार अनेकांत द्वारा ज्ञानमात्रभावरूप आत्मा की प्रसिद्धि, वह आत्मा का सच्चा जीवन है। 'ज्ञान' में द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों आ जाते हैं। क्रमानुसार प्रवर्तित तथा अक्रमानुसार प्रवर्तित ऐसे अनंत गुण-पर्यायें वे सब 'ज्ञानमात्र' भाव में समा जाते हैं, परंतु उस ज्ञानमात्र भाव में रागादिभावों का समावेश नहीं होता;—इसप्रकार ज्ञानमात्र आत्मा को शुद्धपना है। वे रागादिभाव ज्ञान के ज्ञेयरूप हैं, परंतु ज्ञान में तन्मयरूप नहीं हैं, भिन्नरूप हैं। ऐसे भिन्न ज्ञान का अनुभव, वह धर्मात्मा की अपूर्व लक्ष्मी है, और वह लक्ष्मी जगत में सर्वोत्कृष्ट ऐसी केवलज्ञान लक्ष्मी को (अनंतगुणों के वैभव सहित) प्रदान करनेवाली है।—ऐसे ज्ञानस्वभाव के साथ जिसने एकता का संबंध स्थापित किया, उसने राग के या निमित्त के साथ एकता का संबंध तोड़ दिया, इसलिये स्वाश्रय से अनंत गुणों की शुद्धतारूप परिणमन होने लगा—वही मोक्षमार्ग है, वही भगवान अरिहंतदेव का शासन है। भगवान कहते हैं कि ऐसे अनेकांत द्वारा स्व-पर को भिन्न जानकर तथा ज्ञान लक्षण से आत्मा को लक्षित करके अंतरोन्मुख हो... तो तुझे अवश्य केवलज्ञानादि अनंतगुणों के वैभवरूप स्वरूप-लक्ष्मी की प्राप्ति होगी... होगी और होगी।—ऐसा अनेकांत मार्ग का वचन है।

ज्ञान में छह कारकों की शक्ति

अहो, एक ज्ञान के अनुभव में तो अनंत गुणों की गंभीरता है; अपने कर्ता-कर्म-साधन-आधार आदि छहों कारक भी उसमें एकसाथ आ जाते हैं, ऐसी ज्ञान की शक्ति है। ऐसी ज्ञानशक्तिवान आत्मा को जो अनुभवते हैं, वे किसी बाह्य कारण की शोध नहीं करते। स्वाश्रय से ही छह कारकरूप होकर आत्मा स्वयमेव केवलज्ञानादिरूप परिणमित होता है।

हे भगवान! आपका अनेकांतशासन अलौकिक फल देनेवाला है!

जय अनेकांत! जय महावीर!

मोक्षमार्गी जैन श्रावक कैसा होता है ?

सेठ श्री भगवानदास शोभालालजी सागरवालों की प्रार्थना से पूज्य स्वामीजी ने श्री तारणस्वामी के अध्यात्मसाहित्य पर कुल 25 प्रवचन किये हैं; उनमें से 16प्रवचन 'अष्ट-प्रवचन' पुस्तक के दो भागों में छप चुके हैं और शेष प्रवचनों की तीसरी पुस्तक तैयार हो रही है; उसमें से कुछ भाग यहाँ दिया है। प्रवचन अत्यंत सुगम शैली के होने से सर्व जिज्ञासुओं को उपयोगी हैं और उनमें जैनश्रावक किसप्रकार मोक्षमार्ग साधता है, उसका सुंदर वर्णन है। (अष्ट-प्रवचन का द्वितीय भाग सिर्फ हिन्दी में ही छपा है; गुजराती में छपाने की जिनकी भावना हो, वे लेखक से सम्पर्क स्थापित करें।)

प्रारंभ में केवलज्ञानदृष्टि से समस्त विश्व को देखनेवाले महावीर परमात्मा को, तथा व्यक्त-प्रसिद्ध तथापि अरूपी ऐसे शुद्ध सिद्ध भगवंतों को नमस्कार करके मंगल किया है। देखो, अरूपी सिद्ध भगवंतों का और अरिहंत भगवंतों का ऐसा स्वरूप शुद्ध जैनमार्ग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं होता। श्रावक को शुद्ध जैनमार्ग के सिवा अन्य की श्रद्धा स्वप्न में भी नहीं होती। प्रथम, चौथे गुणस्थान में आत्मा की अनुभूतिसहित सम्यग्दर्शन होता है, पश्चात् पाँचवें गुणस्थान में आत्मा की विशेष शुद्धतासहित श्रावक के व्रतादि का आचरण होता है; ऐसा जैनधर्म का क्रम है। इसलिये जो अपना हित चाहते हों, वे कुमार्ग छोड़कर वीतरागी जैनमार्ग के सेवन द्वारा आत्मा को पहिचानकर शुद्ध सम्यग्दर्शन करो और पश्चात् श्रावक के व्रतादि का आचरण करो—ऐसा संतों का उपदेश है।

'जैनत्व' कब ? मोक्षमार्ग में प्रवेश कब ?

आत्मा का स्वभाव जैसा है, वैसा जानकर शुद्ध दृष्टि करना, सो सम्यग्दर्शन है। देहादि संयोग, रागादिभाव या इंद्रियज्ञान, उनमें आत्मबुद्धि छोड़कर शुद्धदृष्टि से असंयोगी शुद्ध पूर्णानंदमय चैतन्यस्वरूप आत्मा धर्मी को अंतर में दिखायी देता है।—ऐसे आत्मा को

देखनेवाला जीव जैन है; ऐसे आत्मा को दृष्टि में लिये बिना जैन में स्थान नहीं मिलता। सम्यग्दर्शन हो, तभी जैनत्व प्रारंभ होता है; उसके अभी भले ही व्रतादि न हों, तथापि वह जीव मोक्षमार्ग में प्रविष्ट हो गया है।

वह अव्रती श्रावक शुद्ध सम्यग्दर्शनस्वरूप अपने आत्मा को देखता है। आत्मा को देखनेवाली ऐसी शुद्ध दृष्टि, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है, उसमें राग नहीं आता। चौथे गुणस्थान में ऐसा सम्यग्दर्शन हुआ, तब से वह जीव मोक्षसन्मुख और संसार-दुःख से पराङ्मुख हुआ। दुःख के कारणरूप मिथ्यात्वादि भावों से पृथक् होकर, भेदज्ञान द्वारा चैतन्य के स्वरूप का स्वाद उसने चख लिया, वहाँ वह संसार-दुःखों से पराङ्मुख हो गया, उसकी परिणति का प्रवाह मोक्ष-सुख की ओर चलने लगा।

मोह को जीतकर मोक्षसन्मुख हुआ, वह सच्चा जैन है।

देखो, यह 'जैन' का स्वरूप! सच्चा जैन कब कहा जाता है? उसकी यह बात है। जिसे अभी व्रत नहीं हैं, चारित्र नहीं हैं, परंतु शुद्ध आत्मा की दृष्टि वर्तती है, और जो वीतराग देव-गुरु का भक्त है, वह प्रथम प्रारंभिक जैन है; अव्रती होने पर भी वह धर्मी है, वह मोक्ष का पथिक है, वह स्वभावसुख के सन्मुख और संसार-दुःख से विमुख हुआ वर्तता है। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं है, उसके परमार्थ जैनत्व नहीं है, क्योंकि उसने मोह को नहीं जीता है।

'जीत सो जैन।'—किसे जीते?—मोह को। कौन जीते?—स्वभावसन्मुख हुआ जीव। बाह्य में जीव को कोई शत्रु नहीं है, परंतु अंतर में मिथ्यात्व-अज्ञान-राग-द्वेष-मोहरूप अपना भाव शत्रु हैं, उसे सम्यक्त्वादि शुद्ध भाव द्वारा जीतना, नष्ट करना, वह सच्चा जैनत्व है। ऐसे जैनत्व का प्रारंभ सम्यग्दर्शन द्वारा होता है। अंतर में आत्मा की अचिंत्य महिमा जानकर, उसके सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की तैयारीवाले जीव ने जहाँ तीन करणों द्वारा मोह का नाश प्रारंभ कर दिया, वहाँ उसे 'जिन' कह दिया है। ऐसी दशा के बिना मात्र बाह्य आचरण से जैन में स्थान नहीं मिलता। भाई, आत्मज्ञान के बिना तू व्रतादि शुभाचरण करेगा तो उससे पुण्यबंध होगा परंतु कहीं भव से तेरा छुटकारा नहीं हो सकता। मिथ्यात्व सहित शुभक्रियाएँ तो मोक्ष से पराङ्मुख और संसार के सन्मुख हैं, और राग से परे चैतन्यरस को देखनेवाला धर्मी जीव सम्यग्दर्शन द्वारा मोक्ष के सन्मुख और संसार से पराङ्मुख है।

धर्मी को आत्मसुख का वेदन होता है। संसार की चार गतियों से पार, मोक्ष के अतीन्द्रियसुख का स्वाद धर्मी जीव ने चख लिया है। जो सुख इन्द्र के या चक्रवर्ती के बाह्यवैभव में नहीं है, वह अपूर्व सुख चैतन्य के श्रद्धा-ज्ञान में धर्मी को निरंतर वर्तता है।

जो जैन हुआ, वह जिनदेव के सिवा अन्य मार्ग को नहीं मानता

सम्यग्दर्शन होने पर धर्मी को सिद्ध समान अपना शुद्ध आत्मा श्रद्धा-ज्ञान एवं स्वानुभव में स्पष्ट आ जाता है; तब से उसकी गति-परिणति विभावों से विमुख होकर सिद्धपद की ओर चलने लगी, वह मोक्षमार्गी हुआ। पश्चात् ज्यों-ज्यों शुद्धता और स्थिरता बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों श्रावकधर्म और मुनिधर्म प्रगट होता है। श्रावकपना तथा मुनिपना तो आत्मा की शुद्धदशा में रहते हैं, वह कोई बाहर की वस्तु नहीं है। जैनधर्म में तीर्थंकरदेव ने मोक्षमार्ग कैसा कहा है, उसकी खबर न हो, और विपरीतमार्ग में जहाँ-तहाँ मस्तक झुकाता हो—ऐसे जीव को जैनत्व या श्रावकत्व नहीं होता। जैन हुआ, वह जिनवरदेव के मार्ग के सिवा अन्य को स्वप्न में भी नहीं मानता।

कोई कहे कि आत्मा एकांत शुद्ध है और उसे विकार या कर्म का कोई संबंध है ही नहीं—तो वह बात यथार्थ नहीं है। आत्मा द्रव्यस्वभाव से शुद्ध है परंतु पर्याय में उसे विकार भी है; वह विकार अपनी भूल से है और स्वभाव की प्रतीति द्वारा वह दूर हो सकता है तथा शुद्धता हो सकती है। विकारभाव में अजीवकर्म निमित्त हैं, विकार टलने पर वे निमित्त भी छूट जाते हैं। इसप्रकार द्रव्य-पर्याय, शुद्धता-अशुद्धता, निमित्त—इन सबका ज्ञान बराबर करना चाहिये। उन्हें जानकर शुद्ध आत्मा की दृष्टि करनेवाला जीव सम्यग्दृष्टि है।

सम्यग्दृष्टि को नव तत्त्वों की श्रद्धा

जगत में अनंत आत्मा स्वयं सिद्ध, किसी के बनाये बिना सदा विद्यमान हैं; प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र अपने अनंत गुण-पर्याय सहित हैं। कोई कहे कि आत्मा को पर्याय नहीं होती, वह तो बाहर से लगी हुई है—तो वह बात मिथ्या है। भाई, पर्याय भी आत्मा का स्वरूप है, वह आत्मा का एक स्वभाव है; सिद्ध में भी पर्याय तो है। पर्याय को कहीं छोड़ नहीं देना है परंतु उसमें जो विकार है, उसे छोड़ता है। शुद्ध ज्ञान-आनंदमय निर्विकारी पर्याय, वह तो आत्मा का स्वरूप है।

— चेतनस्वरूप आत्मा अपने गुण-पर्याय सहित वस्तु वह जीवतत्त्व है।

— उसकी पर्याय में मिथ्यात्वादि अशुद्धता, वह पुण्य-पाप-आस्रव और बन्धतत्त्व।

— उस अशुद्धता में निमित्तरूप पुद्गल कर्म, वह अजीवतत्त्व।

— सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा अशुद्धता का तथा कर्म का नाश और शुद्धता का प्रगट होना, वह संवर-निर्जरा-मोक्षतत्त्व।

इसप्रकार सम्यग्दृष्टि को नवों तत्त्वों का स्वीकार होता है। नव तत्त्वों में भूतार्थस्वरूप शुद्ध आत्मा है, उसकी अनुभूति वह सम्यग्दर्शन है। भले किसी को नव तत्त्वों के नाम आयें या न आयें, परंतु उनके भावों का जैसा स्वरूप है, वैसा उस सम्यग्दृष्टि के ज्ञान में तथा श्रद्धान में निरंतर वर्तता है। अजीव के किसी अंश को वह जीवरूप नहीं समझता, अथवा राग के किसी अंश का वह संवर-निर्जरा-मोक्षरूप वेदन नहीं करता। नवों तत्त्वों के भाव जैसे हैं, वैसे ही उसके वेदन में आते हैं, विपरीत वेदन नहीं होता। ऐसा तत्त्वार्थश्रद्धान प्रत्येक सम्यग्दृष्टि को अवश्य होता है।

आत्मा अपने सहज स्वभाव से रागी-द्वेषी या मोही नहीं है, सहज स्वभाव से तो वह वीतरागी दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप है; और वही परमार्थ जीवतत्त्व है; ❀ वह जीव जब अपने सच्चे स्वभाव को भूलकर अज्ञान से अपने को रागरूप या शरीररूप से अनुभवता है, तब उसमें अजीव कर्म निमित्त है; ❀ उसके संबंध से जीव की पर्याय में पुण्य-पाप-आस्रव और बंधभावों की उत्पत्ति होती है, वे सब क्षणिक अशुद्धभाव हैं और वे संसार के कारण हैं; ❀ वह जीव जब अजीव से अत्यंत भिन्न अपने सहज ज्ञानस्वरूप को अनुभवता है, तब उसकी पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धभाव अर्थात् संवर-निर्जरा-मोक्षरूप भाव प्रगट होते हैं। तब उसे कर्म का निमित्त संबंध भी छूट जाता है। जैन दर्शनानुसार नव तत्त्वों का ऐसा सच्चा स्वरूप जानने पर सम्यग्दर्शन होता है।

आत्मवस्तु द्रव्य-पर्यायस्वरूप है

आत्मा द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु है, वह भी इसमें आ जाता है। वस्तु को यदि एकांत द्रव्यस्वरूप नित्य माने और अनित्य-पर्यायरूप न माने, अथवा अकेली पर्यायरूप माने और द्रव्यरूप न माने, तो नवतत्त्व या आत्मवस्तु कुछ भी सिद्ध न हो; इसलिये द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु जैसी है, वैसी श्रद्धा-ज्ञान में लेना चाहिये।

जीव और अजीव दोनों की क्रियाओं की अत्यंत भिन्नता

नव तत्त्वों को जानकर सम्यग्दृष्टि जीव अपने चिदानंदस्वभाव को लक्ष में लेता है; उसे मिथ्यात्वादि कर्मप्रकृति का अभाव हो गया, वह अजीव की क्रिया अजीव में है, वह क्रियापरिणति कहीं जीव की नहीं है, जीव ने उसे नहीं किया, वह जीव से भिन्न है। तथा जो सम्यग्दर्शनादि क्रिया-परिणति हुई, वह जीव की क्रिया जीव में है, जीव उसका कर्ता है, वह जीव से भिन्न नहीं है; वह कहीं कर्मप्रकृति ने नहीं की है। उन जीव और अजीव दोनों का परिणमन स्वतंत्र भिन्न अपने-अपने में है। जीव के उत्पाद-व्यय-ध्रुव जीव में हैं, अजीव के उत्पाद-व्यय-ध्रुव अजीव में हैं।

देखो, यह वस्तुस्वरूप! सत् वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है। उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव अपने से है और पर से नहीं है। ऐसा सत् वस्तु का ज्ञान होने से भेदज्ञान होता है, इसलिये पर में कर्तृत्वबुद्धि उड़ जाती है और स्वसन्मुख परिणमन होता है। इसप्रकार वस्तुस्वरूप का भेदज्ञान, वह वीतरागता का कारण है। वस्तुस्वरूप के ज्ञान बिना राग-द्वेष कभी नहीं छूटते।

अहा, ऐसी बात सर्वज्ञदेव के जैनमार्ग के सिवा अन्यत्र कहाँ है? जैनमार्ग का और अन्य मार्ग का कहीं मेल नहीं बैठता; जैनमार्ग को और अन्य मार्ग को जो समान मानते हैं, उनके तो अज्ञान की तीव्रता है। भाई! जैनमार्ग को जाने बिना तुझे जैनत्व या श्रावकत्व कैसा? जैनमार्ग में जैसी स्वतंत्रता और पूर्णता बतलाई है, वैसी अन्यत्र कहीं नहीं बतलाई। तत्त्व के ऐसे वीतरागी स्वरूप को जानकर श्रद्धा करने से जीव को अपूर्व सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है, चैतन्य के अपूर्व सुख का उसे वेदन होता है और वह जीव संसारदुःख से विमुख हो जाता है। इसप्रकार आनंद की उत्पत्ति और दुःख का नाश सम्यग्दर्शन द्वारा होता है। सम्यग्दर्शन होने पर सच्चा जैनपना-धर्मीपना-मोक्षमार्गीपना प्रारंभ होता है।

सम्यग्दर्शन और अव्रतपना—दोनों साथ हो सकते हैं

आत्मा के आनंदस्वभाव की प्रतीति होने पर चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को अव्रतीपना है, तथापि वहाँ शुद्ध आत्मा की अनुभूति और आनंद का स्वाद है। इसप्रकार उस सम्यग्दृष्टि को अव्रतरूप औदयिकभाव और सम्यक्त्वरूप औपशमिकादि भाव एक साथ होते हैं परंतु दोनों का कार्य भिन्न है। अव्रत तो बंध के कारणरूप से कार्य करता है और सम्यग्दर्शन

मोक्ष के कारणरूप से कार्य करता है। इसप्रकार एकसाथ होने पर भी दोनों की भिन्नता जानना। उसने शुद्ध आत्मा को जाना है, तथापि अभी पाँच इन्द्रियों के उपभोग का अशुभभाव भी होता है; वहाँ व्रत नहीं है, तथापि राग से भिन्न चैतन्यतत्त्व की प्रतीति एक क्षण भी नहीं हटती। विषयों का अनुराग होने पर भी उससे भिन्न शुद्ध चैतन्यदृष्टि धर्मी को निरंतर वर्तती है। चैतन्यसुख विषयातीत है, उसका स्वाद ले लिया है, इसलिये विषयों में सुखबुद्धि तो होती ही नहीं है, इसलिये अनंतानुबंधी रागादि तो होते ही नहीं हैं। इसलिये उसके राग को अल्प ही कहा है।

अकेले सम्यग्दर्शन में मोक्षमार्ग पूरा नहीं होता

सम्यग्दर्शन होते ही सब राग उसी समय दूर नहीं हो जाता। यदि सम्यग्दर्शन होते ही राग का सर्वथा अभाव हो जाये, और मोक्ष हो जाये तो फिर मोक्षमार्ग का या मोक्षमार्ग के उपदेश का ही अभाव हो जाये; इसलिये तीर्थ की प्रवृत्ति ही न रहे। सम्यग्दर्शन के पश्चात् भी जीव अमुक काल तक संसार में रहता है और मोक्षमार्ग को साधता है तथा उसका उपदेश देता है।—इसप्रकार मोक्षमार्गरूप तीर्थ की प्रवृत्ति है। यद्यपि सम्यग्दर्शन होते ही श्रद्धा में से तो सब राग निकल गया और शुद्ध आत्मा की अनुभूति हुई है, परंतु अभी चारित्र की पर्याय में अव्रतादि संबंधी राग है, उसे दूर करना शेष है, उसका धर्मी को ज्ञान है और श्रावकधर्म तथा मुनिधर्म की उपासना द्वारा उस राग को दूर करके वीतराग होकर केवलज्ञान प्रगट करेगा, तत्पश्चात् मुक्ति होगी। इसप्रकार सम्यग्दर्शन का और मोक्षमार्ग का स्वरूप जैसा है, वैसा जानना चाहिये। अकेले सम्यग्दर्शन में मोक्षमार्ग पूरा नहीं हो जाता; सम्यग्दर्शन होने पर मोक्षमार्ग का प्रारंभ होता है, परंतु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों पूरे हों, तब मोक्षमार्ग पूरा होता है। अहा, जैनधर्म अलौकिक है! और उसमें कहा हुआ मोक्षमार्ग भी अलौकिक है। स्पष्ट मार्ग, उसमें राग का एक कण भी नहीं समा सकता।

तीनों प्रकार के सम्यग्दर्शन शुद्ध हैं

तीन प्रकार के सम्यग्दर्शन में से औपशमिक, क्षायोपशमिक या क्षायिक कोई भी हो, उन तीनों सम्यग्दर्शन में शुद्ध आत्मा ही ध्येयरूप है, इसलिये उन तीनों सम्यग्दर्शन को शुद्ध कहा जाता है और तीनों को निश्चयसम्यग्दर्शन कहा जाता है। अव्रती को अभी राग होने पर भी वीतरागस्वभाव का प्रेम उसे वर्तता है, उसकी भावना वर्तती है; उसकी दृष्टि राग से और विषयों से पराङ्मुख है और चैतन्यसुख के सन्मुख है। वह जीव अल्पकाल में संसार का छेद करके

मोक्षसुख को साधता है। अव्रती सम्यग्दृष्टि को भी आत्मस्वरूप में शंका आदि कोई दोष नहीं रहते।

कोई सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा तीर्थंकररूप से अवरित हो, तीन ज्ञान सहित हो और चक्रवर्ती भी हो, उसकी हजारों रानियाँ आदि बाह्य पुण्यवैभव भी हो, परंतु अंतरंग ज्ञानचेतना में उसका स्पर्श भी नहीं होने देते। धर्मी श्रावक को कोई अलौकिक दशा होती है, मुनिदशा की तो बात ही क्या करें! अरे, मिथ्यादृष्टि जीव पंच महाव्रत पालकर नववें ग्रैवेयक तक गये, परंतु रागरहित आत्मा के स्वाद बिना उन जीवों को वास्तव में जैनत्व नहीं हुआ, क्योंकि उन्होंने मिथ्यात्वमोह को नहीं जीता। सम्यग्दर्शन हुआ, तब अव्रती सम्यग्दृष्टि भी सच्चा जैन हुआ, उसने मिथ्यात्व मोह को जीत लिया; मोह का नाश करके सम्यग्दर्शन द्वारा वह जैन हुआ। (यह लक्ष में रखना कि नव ग्रैवेयकों में अधिकांश जीव तो सम्यग्दृष्टि ही हैं, मिथ्यादृष्टि जीव तो थोड़े ही हैं, और नव ग्रैवेयक के बाद ऊपर के देवलोकों में सर्व जीव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं।)

सम्यक्त्वी भले ही अव्रती... तथापि जितेन्द्रिय है

जहाँ अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव के वेदनपूर्वक सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ जीव जितेन्द्रिय हुआ। अव्रती होने पर भी उसे जितेन्द्रिय कहा है—

कर इन्द्रिजय ज्ञान स्वभाव रु, अधिक जाने आत्मको।
निश्चयविषैं स्थित साधुजन, भाषैं जितेन्द्रिय उन्हीं को॥31॥

वह अव्रती सम्यग्दृष्टि जितेन्द्रिय जीव संसारदुःख से विमुख है। अभी अव्रत के राग-द्वेष संबंधी दुःख का वेदन तो है, परंतु उसके साथ राग से पार चैतन्य के अतीन्द्रियसुख का अनुभव भी वर्तता है; उस चैतन्यसुख के प्रेम के निकट वह संसारदुःख से पराङ्मुख है। उसकी रुचि का जोर पलटकर, विषय-दुःखों से छूटकर आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद के सन्मुख हुआ है। बाह्य में विषयों की रागप्रवृत्ति दिखायी देती है, परंतु अंतर्चेतना उससे पृथक् है।

जैसे धाय बालक चुँघाइ करै लालिपालि,
जानै ताहि और को जदपि वाके अंक है।
तैसे ज्ञानवंत नाना भाँति करतूति ठानै,
किरियाकों भिन्न मानै यातें निकलंक है॥

जैसे धायमाता बालक को दूध पिलाती है, उसका लालनपालन करती है, गोद में लेती

है, तथापि उसे दूसरे का जानती है; उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि जीव स्त्री-पुरुष-परिवार में रहता है, भाँति-भाँति की शुभाशुभ क्रियाओं में वर्तता है, तथापि उन क्रियाओं को आत्मस्वभाव से भिन्न जानता है, अंतर में चैतन्यतत्त्व को ही स्वतत्त्व जानकर उसी में तन्मयता से वर्तता है, उसमें से एक क्षण भी च्युत नहीं होता। अंतरंग अभिप्राय में वह निरंतर जानता है कि मैं तो चैतन्यस्वभावी हूँ, यह रागादिभाव कहीं मेरे चैतन्य में से उत्पन्न नहीं हुए हैं, मेरा चेतनभाव कहीं राग का उत्पादक नहीं है और चेतनभाव को बाह्य विषयों के साथ कुछ लेना-देना नहीं है—ऐसी अपूर्व चैतन्यपरिणति की धारा धर्मी को निरंतर वर्तती है। उसे राग में या विषयों में एकत्वभाव कभी नहीं होता; उनसे सदा भिन्न का भिन्न रहता है। वाह रे वाह! धर्मी की दशा तो देखो!

सम्यग्दृष्टि की दो धाराएँ—एक उपादेय, दूसरी हेय

प्रश्न—यदि धर्मी को अव्रत में दुःख लगता है तो उसे छोड़ क्यों नहीं देते?

उत्तर—भाई, उसने अपनी चेतना में से तो उसे छोड़ ही दिया है। धर्मी अव्रत को दुःख जानता है और उसकी चेतना राग से भिन्न ही वर्तती है; वह ज्ञानचेतना तो पृथक् ही है, मुक्त ही है; परंतु अभी चैतन्य में स्थिरता के वीतरागी परिणाम नहीं हैं, उतनी अस्थिरता है और उतना दुःख भी है। धर्मी को चैतन्य का वीतरागी सुख भी वर्तता है और अव्रतादि का दुःख भी वर्तता है।—ऐसी दोनों धाराएँ धर्मी को वर्तती हैं, उन्हें अज्ञानी नहीं जान सकते, इसलिये उन्हें तो ज्ञानी मात्र राग करता हुआ दिखायी देता है, परंतु ज्ञानी की रागरहित आनंदमय ज्ञानचेतना उसे दिखायी नहीं देती। ज्ञानी को दोनों धाराएँ एकसाथ होने पर भी उनमें चैतन्यसुख उपादेयरूप से है और अव्रतादि का दुःख हेयरूप से है। चेतना में ऐसा विवेक धर्मी को निरंतर वर्तता है। उसकी चेतना सुख के वेदन में तन्मय और दुःख से भिन्न पराङ्मुख वर्तती है। इसप्रकार उसकी दृष्टि में आनंद का ही उपभोग है।—ऐसे सम्यग्दृष्टि जैन हैं, वे मोक्ष के साधक हैं।

'जय महावीर!'

चैतन्य के साधक जीवों को वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र की मंगल-छाया में एकमात्र आत्महित के उपाय में परम ज्ञान-वैराग्यपूर्वक सतत प्रवर्तना योग्य है; और उसके फल में जो अद्भुत परम शांति का वेदन होता है, वह परम तृप्तिकर है।

परमागम का मधुर प्रसाद

[8]

इस लेखमाला के सात लेख आत्मधर्म के गतांकों में दिये जा चुके हैं। वीतरागमार्ग के परमागम का प्रसाद कितना सुंदर-मधुर-आनंददायी है! उसका स्वाद जो चखता है, उसी को उसकी प्रतीति होती है। प्रवचन में स्वामीजी कहते हैं कि—भाई, जैनधर्म में तो वीतरागी देव-गुरु का सेवन है, उन्हें पहिचानने पर परमार्थ आत्मा की पहिचान होती है और अंतर में स्वयं चैतन्यरस के अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है,—ऐसा यह जैनमार्ग है। अहा, ऐसे उत्तम मार्ग को प्राप्त करके कुमार्ग की कौन सेवा करे? भाई! ऐसा जैनमार्ग अनंत काल में किसी महान भाग्योदय से प्राप्त हुआ है। अपनी दर्शनशुद्धि के लिये, अपने कल्याण के लिये तू परम सत्य वीतराग मार्ग के देव-गुरु-शास्त्र को भलीभाँति पहिचानकर, उनके मार्ग का उत्साहपूर्वक सेवन कर।

वीतराग की वाणी मोह को नष्ट करने के लिये तलवार की तीक्ष्ण धार के समान है।—एक प्रहार दो टुकड़े! एक और अतीन्द्रिय चैतन्य सुखमय आत्मा और दूसरी तरफ समस्त राग और विषय—इसप्रकार दोनों का सर्वथा भेदज्ञान कराकर जिनवचन विषयों का विरेचन कराते हैं और चैतन्यसुख का उत्साह जागृत करते हैं।—अहो, चैतन्य का सुख प्रदान करनेवाले ऐसे जिनवचन महान उपकारी हैं।

❀ सत् की पूर्णता ❀

वस्तु की सत्ता (सत्त्व, सत्पना) द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त होकर समाप्त होती है। परंतु मात्र द्रव्य में या गुण में ही सत्ता व्याप्त होती है और पर्याय में सत्ता व्याप्त नहीं होती—ऐसा नहीं है। द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों मिलकर सत् वस्तु की पूर्णता है।

सत् द्रव्य-गुण-पर्याय यह तीनों सत्त्व का ही विस्तार है, सत्त्व से (अर्थात् वस्तु को सत्ता से) वे कोई भिन्न हैं, भिन्न-भिन्न तीन सत्ताएँ नहीं हैं, एक ही सत्ता द्रव्य-गुण-पर्याय सर्व में व्यापक हैं।

❀ अभेद की अनुभूति में आनंद ❀

❀ उस अनुभूति में पर्याय की गौणता है, अभाव नहीं। ❀

सत् की अनुभूति में 'द्रव्य-गुण-पर्याय' ऐसे भेद नहीं रहते, वहाँ तो अभेद की अनुभूति का वीतरागी आनंद है। उस अनुभूति में शुद्धपर्यायें गौणरूप हैं, अभावरूप नहीं हैं। 'यह द्रव्य, यह गुण, यह पर्याय'—ऐसे भेदों का लक्ष रहे, वहाँ विकल्प है, जो उसमें अटक जाये, उसमें निर्विकल्प अनुभूति नहीं होती।

❀ निर्ग्रंथ जैनमार्ग; चौथे गुणस्थान में भी सम्यग्दर्शन का निर्ग्रंथपना ❀

आत्मा का वीतरागस्वभाव है; वह स्वभाव तो मोहादि रहित निर्ग्रंथ है; और उस स्वभाव के अवलंबन से जो रागरहित सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रदशा प्रगट हुई, वह भी निर्ग्रंथ है; चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन है, उसे भी निर्ग्रंथ कहा जाता है, क्योंकि उस सम्यग्दर्शन में मिथ्यात्वमोह की ग्रंथि छूट गई है। मुनिदशा के योग्य निर्ग्रंथपना (बाह्य में भी जहाँ वस्त्रादि परिग्रह नहीं है), वह तो छठवें-सातवें गुणस्थान में होता है। ऐसा निर्ग्रंथमार्ग वह जैनदर्शन का मत है। ऐसे जैनदर्शन की पहिचानपूर्वक, शुद्धात्मा की अनुभूतिरूप जो सम्यग्दर्शन है, वह धर्म का मूल है।

जहाँ आत्मा का ज्ञान सच्चा नहीं है, जैनमार्ग के देव-गुरु-सूत्र को जो मानते नहीं है, ऐसे जीव स्वयं तो धर्म से भ्रष्ट हैं, और ऐसे भ्रष्ट जीवों में बाह्य ज्ञान या त्याग आदि की अधिकता दिखाई दे तो उसमें धर्मी को उसकी महिमा नहीं आती; धर्मभ्रष्ट जीव का जो अनुमोदन करे, प्रशंसा करे, वह जीव स्वयं भी धर्म से भ्रष्ट होता है; वीतराग जैनदर्शन के सच्चे मार्ग को वह जानता नहीं है। वीतराग जैनमार्ग तो मोह की गाँठ रहित और वस्त्रादि परिग्रह रहित निर्ग्रंथ है।

❀ अहा, सत्य जैन वीतरागमार्ग! उसकी महिमा की क्या बात ❀

जैनदर्शन तो अलौकिक वीतरागमार्ग है! वीतरागी स्वानुभवी संतों का जो अभिप्राय, सर्वज्ञदेव का जो मार्ग—वह कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने प्रसिद्ध किया है। उस निर्ग्रंथ वीतरागमार्ग का विरोध करके जो कुमार्ग में प्रवर्तते हैं, वे जैनमार्ग से भ्रष्ट हैं।

धर्मात्मा सत्यमार्ग को प्रसिद्ध करें और असत्य मार्ग का निषेध करें, उससे उन्हें किसी

व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं है। सब जीव ज्ञानमय हैं—इस अपेक्षा से तो सब जीव सहधर्मी हैं। अज्ञानी अपने स्वभाव को भूलकर संसार में दुःखी हो रहे हैं, उनके प्रति तो धर्मी को करुणाभाव होता है।

चैतन्य का उत्साह छूटकर धर्मी को पर का उत्साह नहीं होता। अहा, चैतन्य की साधना का ऐसा वीतराग जैनमार्ग, उसका उत्साह, उसकी प्रशंसा, उसकी आराधना करने योग्य है। भाई, ऐसे सुंदर वीतराग जिनमार्ग को साधने के लिये तू जगत के कुमार्गों से हट जा। शुद्ध जैनमार्ग के अतिरिक्त दूसरों के सामने मत देख। जैनधर्म की मूर्ति तो वीतराग होती है, दिगम्बर होती है। जैन मुनियों की मुद्रा परम वीतराग होती है, उनकी अंतरंग दशा तो शुद्धोपयोगमय अलौकिक है, और बाह्य निर्ग्रंथ दशा भी अलौकिक होती है।

❀ महा भाग्य से जैनधर्म मिला... उत्साह से उसका सेवन कर! ❀

अहा, देव-गुरु-धर्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं, उनकी पहिचान के आधार से तो धर्म और मोक्षमार्ग है, इसलिये उनकी पहिचान बराबर करना चाहिये। देव-गुरु-धर्म के विषय में शिथिल होना योग्य नहीं है। अरे, वीतरागी जैन देव-गुरु, उन्हें छोड़कर दूसरे अन्य अज्ञानी-कुगुरुओं को जो वंदन-पूजन करते हैं, वे तो धर्म के निमित्त को छोड़कर संसारमार्ग का सेवन करते हैं, वे वीतरागी देव-गुरु से प्रतिकूल हैं; वीतराग जैनमार्ग से भ्रष्ट हैं।

भाई! जैनधर्म में तो वीतरागी देव-गुरु का सेवन है; उन्हें पहिचानने पर, परमार्थ आत्मा की पहिचान हो और अंतर में अपने को चैतन्यरस के अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आये—ऐसा यह जैनमार्ग है। अरे, ऐसे उत्तम मार्ग को प्राप्त करके कुमार्ग का सेवन कौन करे? भाई! ऐसा जैनमार्ग अनंतकाल में किसी महान भाग्य से प्राप्त हुआ है। अपनी दर्शनशुद्धि के लिये, अपने कल्याण के लिये तू परम सत्य वीतरागमार्ग के देव-गुरु-शास्त्रों को बराबर पहिचानकर उनके मार्ग का उत्साह से सेवन करना।

सम्यग्दृष्टि को भले ही मुनिदशा-चारित्रदशा न हो, तथापि उसकी श्रद्धा में उसका स्वीकार है कि जैनमार्ग में चारित्रदशा ऐसी होती है। उससे विरुद्ध चारित्रदशा को धर्मी जीव नहीं मानता। देव का स्वरूप जो विपरीत मानता है, मुनि की चारित्रदशा को जो विपरीत मानता है, जिसके शास्त्रों में विपरीत प्ररूपणा है—वह जैनदर्शन नहीं है, वह तो जैनदर्शन से बाहर है।

भाई, तू जैनदर्शन की सच्ची पहिचान तो कर, तो तेरा कल्याण होगा। महाभाग्य से ऐसा जैनमार्ग प्राप्त हुआ है तो उत्साह से उसका सेवन कर।

❀ अहा, वीतराग के अद्‌भुत वचन... चैतन्यरस का स्वाद चखाते हैं! ❀

अहा, अद्‌भुत जिनवचन! वे तो चैतन्य के अमृतरस से भरपूर हैं, चैतन्य की शांतिरूप अमृत का स्वाद चखाकर वे विषयों से सुखबुद्धि छुड़ाते हैं। अहा, चैतन्य के जिस धर्म का स्वाद चखने पर सारी दुनिया का रस उड़ जाता है—वह धर्म कैसा होगा! ऐसी धर्मदशा प्रगट हो वहाँ तो अंतर से आत्मा में मोक्ष की भनक आ जाती है, मोक्ष की दशा खुल जाती है, और चैतन्य के शांतरस का स्वाद आता है। इसलिये कहा है कि 'वचनामृत वीतराग के परम शांतरस-मूल।'

अहा, वीतराग के वचन परम शांतरस से परिपूर्ण हैं, भवरोग को मिटाने के लिये वे परम औषधि हैं। वे भवरोग को मिटाकर चैतन्य का वीतरागसुख प्रदान करते हैं। वीतरागदेव के वचनों को समझे और आत्मसुख की प्राप्ति न हो—ऐसा नहीं हो सकता; क्योंकि वीतराग के वचन जीवादि पदार्थों का सम्यक् स्वरूप बतलाकर, श्रेय और अश्रेय का ज्ञान कराते हैं, इसलिये उनके ज्ञान से जीव श्रेयमार्ग का आदर करके कल्याण को प्राप्त करते हैं और अश्रेय ऐसे मिथ्यात्वादि भावों को छोड़कर दुःख से मुक्त होते हैं।

देखो, यह जिनवाणी का फल! जिनवाणी राग की पुष्टि नहीं कराती, परंतु राग की रुचि छुड़ाकर, वीतरागी चैतन्यभाव की पुष्टि कराती है। अहा, वीतराग के वचन आत्मा में शूरवीरता जागृत करते हैं। वीतराग की वाणी पुरुषार्थ रहित नहीं होती। आत्मा का महाआनंद जहाँ वेदन में आया, वहाँ बाह्य विषयों में सुखबुद्धि क्यों रहेगी? चैतन्य के आनंद जैसा सुख जगत में अन्यत्र कहीं है ही नहीं। धन्य हैं वीतराग के वचन! ....चैतन्य रस का अपूर्व स्वाद चखाते हैं।

— परभावों के विशाल प्रवाह के बीच एक चैतन्यतत्त्व ही अडोल है; उसकी भावना में वर्तते हुए मुमुक्षु को संयोगों का कोई प्रवाह बहा नहीं सकता। मुमुक्षु का जीवन अडिगरूप से आत्महित के मार्ग में ही वर्तता है; उसे कोई डिगा नहीं सकता।

जिनमार्ग में वीतराग-चारित्र कर्तव्य है

वह न हो सके तो उस मार्ग की श्रद्धा अवश्य रखना;
राग को मोक्षमार्ग न मानना, कुमार्ग की श्रद्धा मत करना।

कार्तिक कृष्णा 3 के दिन पूज्य बहिनश्री के मंगल सुहस्त से परमागममंदिर में द्वार-स्थापन के मंगल अवसर पर पूज्य स्वामीजी का परमागममंदिर में जो प्रवचन हुआ था वह, तथा कार्तिक कृष्णा 4 के मंगल-दिन का प्रवचन यहाँ दिया जा रहा है। परमागम मंदिर के प्रवचन में जैनदर्शन की अगाध महिमा प्रसिद्ध करते हुए प्रमोदपूर्वक स्वामीजी ने कहा कि—अहा, जैनदर्शन! और उसमें भी सम्यग्दर्शन की महिमा! उसकी क्या बात है? जहाँ आत्मप्रेम हुआ, वहाँ समस्त संसार के सर्व पदार्थों की रुचि हट जाती है, और अंतर में चैतन्यस्वरूप का अतीन्द्रिय स्वाद आता है।

[अष्टप्राभृत-दर्शनप्राभृत, गाथा 21-22]

ऐसे सम्यग्दर्शन की बात जैनदर्शन में आचार्यदेव ने प्रसिद्ध की है। तीर्थंकरदेव ने केवलज्ञान प्रगट हो जाने के बाद जो उपदेश दिया, उसी के अनुसार वीतरागी संतों ने उपदेश दिया है। तीर्थंकर भगवान मुनिदशा में केवलज्ञान होने के पूर्व उपदेश नहीं देते, मौन ही रहते हैं; केवलज्ञान प्रगट हो जाने पर समवसरण में ही भगवान का उपदेश (दिव्यध्वनि) होता है। अपना कार्य पूर्ण कर लेने के पश्चात् भगवान की दिव्यध्वनि निकली। उस उपदेश का अनुसरण करके संतों ने जिसवाणी की रचना की, वे समयसारादि परमागम हैं। उनमें सम्यग्दर्शन का मुख्य उपदेश है।

हे जीव! तू शुद्धभाव से ऐसे सम्यक्त्व को धारण कर। विकल्प से नहीं, राग से नहीं, परंतु अंतर्मुख होकर, राग से पार, विकल्प से पार ज्ञानभाव द्वारा अपने आत्मा का निर्णय कर। जिसमें मन का, राग का या इंद्रियों का संबंध नहीं है, ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर तू शुद्धभाव से सम्यक्त्व को धारण कर। अहा, चैतन्य के अनंत गुणरूपी रत्न, उनमें सारभूत रत्नत्रय, उनमें भी सम्यग्दर्शन सर्वश्रेष्ठ है, वह मोक्षमहल की पहली सीढ़ी है। शुभराग, वह मोक्ष की सीढ़ी

नहीं है, सम्यग्दर्शन वह मोक्ष का प्रथम सोपान है। इस सम्यग्दर्शन के बिना शुभराग की समस्त क्रियायें धारण करे, तथापि उनमें कुछ परमार्थ नहीं है। राग, वह कहीं चैतन्य का अंतरंगभाव नहीं है। सम्यग्दर्शन, वह चैतन्य का अंतरंगभाव है। इसलिये कहा है कि—

मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा;
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥

ज्ञान या चारित्र, वे सम्यग्दर्शन के बिना सच्चे नहीं हैं, इसलिये वे मोक्षमार्ग में कुछ भी उपयोगी नहीं है। सम्यग्दर्शनयुक्त ज्ञान और चारित्र ही मोक्षमार्ग है, वही कार्यकारी है। हे भाई! राग की क्रिया में या मात्र शास्त्रों की जानकारी में सम्यग्दर्शन नहीं है। चैतन्य की अनुभूति से वे बाह्य हैं। उनसे रहित अंतरंग चैतन्य की अनुभूति करने पर ही सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन, वह मोक्षमार्ग का कर्णधार है।

अहा, ऐसा सम्यग्दर्शन करे, वह जीव आराधक है; भले ही चारित्र अल्प हो, त्याग कम हो, तथापि वह आराधक है। हे जीव! जैनदर्शन में केवलीभगवान ने मोक्षमार्ग में जैसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहे हैं, उसीप्रकार जानकर उनकी बराबर श्रद्धा करना। उनमें से अभी तुझसे हो सके, उतना तो चारित्र भी करना। करने योग्य तो पूर्ण वीतराग-चारित्रदशा ही है; परंतु वैसा न हो सके और राग शेष रहे, तो उस राग को धर्म न मानना, राग को मोक्षमार्ग न मानना। वीतरागमार्ग की श्रद्धा छोड़कर यदि राग को धर्म मानेगा तो तुझे मिथ्यात्व होगा। वीतरागमार्ग की श्रद्धा रखेगा तो तेरा सम्यग्दर्शन और आराधकता बनी रहेगी।

अनंत तीर्थंकरों द्वारा साधा हुआ, और समवसरण में गणधरादिकों की सभा के मध्य में घोषित किया हुआ जो जैनमार्ग है, उसमें गड़बड़ मत करना, मार्ग को विपरीत मत मानना। मूल मार्ग की श्रद्धा रखकर तुझसे हो सके, उतना करना, और शेष की भावना रखना। निर्ग्रंथ मुनिदशा का पालन न हो सके तो कहीं वस्त्रसहित मुनिपना नहीं माना जाता। यदि वस्त्रसहित मुनिपना मानेगा तो तीर्थंकरों की विराधना होगी और तू वीतरागमार्ग से भ्रष्ट हो जायेगा। भाई! जैनमार्ग में राग के एक सूक्ष्म कण का भी समावेश नहीं होता, इसलिये राग के किसी भी कण को मोक्षमार्ग के रूप में न मानना।

अरे जीव! भव-भ्रमण के दुःखों से छूटना हो तो परम बहुमानपूर्वक तू जैनदर्शन की

श्रद्धा कर, और तुझसे जितनी हो सके उतनी वीतरागमार्ग की आराधना कर। यदि न हो सके तो श्रद्धा रखना परंतु अन्य प्रकार न मानना; मार्ग को न बिगाड़ना। चारित्रदोष हो तो उसे चारित्रदोष के रूप में जानना, परंतु उस दोष को मार्ग में न मिलाना। मार्ग को ज्यों का त्यों रखना।

अहा, वीतरागी चैतन्यशान्ति का वेदन सम्यग्दर्शन में है। उस शांति में कषाय का (शुभराग का भी) कण कैसे समाये? शुभराग भी कषाय की जाति का है, वह कहीं चैतन्य की शांति की जाति नहीं है। सम्यक्त्वी भी अपनी अवस्था में जितने रागादिभाव होते हैं, उन्हें दोषरूप जानता है। ज्ञानधारा में रागधारा को नहीं मिलाता। जितनी ज्ञानधारा है, उसे तो मोक्षमार्ग जानता है और जितनी रागधारा है, उसे बंधमार्ग जानता है। ज्ञानधारा में चैतन्यस्वाद का वेदन है; वह वेदन कहीं रागधारा में नहीं है। रागधारा में तो दुःख का ही वेदन है। चैतन्यस्वाद की मधुरता के पास धर्मी को सांसारिक रस का स्वाद उड़ गया है। सम्यग्दर्शन में ऐसे चैतन्य का स्वाद है। ऐसे सम्यग्दर्शन को हे जीव, तू अत्यंत भक्ति से धारण कर! इसके अतिरिक्त सम्यक्चारित्र का भी जितना पालन हो सके, उतना अवश्य करना—ऐसा उपदेश भगवान केवली-जिनदेव के मार्ग में है। अहा, ऐसा सुंदर मार्ग! उसे प्राप्त करके हे जीव! तू दूसरे मिथ्यामार्ग के सन्मुख दृष्टि न कर।

जिनवरदेव द्वारा कहे हुए मोक्षमार्ग में प्रथम कर्णधार सम्यग्दर्शन है। चारित्रदशा-मुनिपना ग्रहण करे, उसी को ही सम्यग्दर्शन माना जायेगा—ऐसा नहीं है। मुनिदशा का चारित्र न हो तो भी सम्यग्दर्शन धर्मी को होता है। हाँ, सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्दर्शन के योग्य चारित्र (कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का त्याग, अभक्ष्य भक्षण का त्याग आदि आचरण) अवश्य होते हैं। परंतु सम्यग्दर्शन के बिना सम्यक्चारित्रदशा तो कदापि नहीं होती। सम्यग्दर्शन सहित सम्यक्चारित्र हो तो वह मोक्षमार्ग में शोभा देता है, वह तो उत्तम है। परंतु किसी को वैसी चारित्रदशा न हो तो उसके सम्यग्दर्शन का मूल्य कम नहीं हो जाता। सम्यग्दर्शन द्वारा भी उसकी आराधकता बनी रहेगी। इसलिये हे जीवो! तुम भाव से ऐसे उत्तम सम्यग्दर्शन को धारण करो।

अहा, सम्यग्दर्शन आत्मा की अपार महिमा को धारण करता है; उस सम्यग्दर्शन का मूल्य किसी बाह्य पदार्थ द्वारा नहीं हो सकता। जो जीव बाह्य पदार्थ के द्वारा या राग द्वारा

सम्यग्दर्शन का मूल्य करना चाहते हैं, उन्हें सम्यक्त्व की अपार महिमा की खबर नहीं है। अरे, चैतन्यतत्त्व जहाँ प्रतीति में आया, वहाँ उसके अनंत गुणों में से शुद्धता का प्रवाह बहने लगा; स्वर्ग के इंद्र भी उस सम्यक्त्व की प्रशंसा करते हैं। चारित्रदशावंत मुनि की महिमा की क्या बात! वे तो महा पूज्य हैं। और सम्यग्दर्शन की भी अपार महिमा है; सम्यग्दृष्टि असंयमी हो तो भी भगवान ने उसे मोक्षमार्ग में स्वीकार किया है। सम्यग्दृष्टि जीव कल्याण की परम्परा सहित उत्तम मोक्षसुख को प्राप्त करते हैं।

जिन्हें शुभराग और संयोग की अपेक्षा सम्यक्त्व का मूल्य कम लगता है, और सम्यक्त्व की अपेक्षा राग का या संयोग का मूल्य जिन्हें अधिक लगता है, वे जीव सम्यक्त्व के विराधक होकर संसार में परिभ्रमण करते हैं। जो जीव सम्यक्त्व का आराधक है, उसे आत्मा के अतिरिक्त जगत के किसी भी पदार्थ की महिमा भासित नहीं होती। आत्मा की अपार अतीन्द्रिय महिमारूप सम्यग्दर्शन द्वारा वह परंपरा अक्षय सुखरूप मोक्ष को प्राप्त होती है।

अहा, सम्यक्त्व की महिमा की ऐसी बात सुनने का अवसर मिलना तो बहुत दुर्लभ है। ऐसा श्रावक कुल और वीतराग की वाणी सुनने को मिली तो ऐसा उत्तम अवसर प्राप्त करके आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान कर लेना चाहिये, वही यह उत्तम मनुष्य भव प्राप्त करने का सच्चा फल है।

सम्यक्त्व रहित ऐसे मनुष्य शरीर तो अनंत बार जीव को मिले, परंतु उनसे आत्मा का हित नहीं हुआ। शरीर तो क्षणभंगुर है, करोड़ों रोगों से भरपूर है। रोग में फँसकर कब यह शरीर उड़ जायेगा, उसका पता नहीं है। अंतर में आत्मा उससे भिन्न क्या वस्तु है—उसकी पहिचान करे तो मनुष्यपना प्राप्त करने की सफलता है! 'शरीरं व्याधिमंदिरम्' और 'आत्मा आनंद-मंदिरम्' है। भाई, शरीर तो करोड़ों रोगों का घर है, उसमें से तो रोगों की उत्पत्ति होगी; उसमें से आनंद नहीं निकलेगा। शांति-आनंद का मंदिर तो आत्मा है; उसकी श्रद्धा करने पर अपूर्व आनंद प्रगट होता है। वह सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा के सुखरस का पान करते-करते मोक्षदशा को साधता है।

अहा! अनंत काल के दु:ख का अंत, और अनंत-अनंत काल के अतीन्द्रिय सुख का प्रारंभ सम्यग्दर्शन में है; ऐसे सम्यग्दर्शन के लिये तो आत्मा का कितना आकर्षण होना चाहिये। आत्मा की अत्यधिक लगन और प्रयत्न हो, तब सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

शुद्ध आत्मस्वभाव सन्मुख होकर उसका स्वीकार करने पर सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूप आत्मा स्वयं परिणमित होता है; इसलिये सम्यग्दर्शन, वह आत्मा ही है। ऐसे सम्यग्दर्शन की महिमा प्रसिद्ध करके कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि हे जीवों! तुम ऐसे सम्यग्दर्शन की आराधना द्वारा मनुष्यभव को सफल करो।

— जय महावीर!

परमागम का मधुर प्रसाद

[9]

भगवान महावीरस्वामी के मोक्षगमन का यह ढाई हजारवाँ मंगल-वर्ष चल रहा है; वीरप्रभु की वीतरागवाणी का आनंदकारी प्रवाह कुन्दकुन्दाचार्यदेवादि संतों के प्रताप से आज भी चल रहा हे और हम सबको भी पूज्य स्वामीजी के प्रताप से मिला है। तथा उस वीतरागवाणीरूप महान परमागम जिसमें उत्कीर्ण हुए हैं और महावीरस्वामी की जिसमें प्रतिष्ठा होना है—ऐसा परमागम मंदिर भी इसी वर्ष में तैयार हुआ है। उन परमागमों का मधुर प्रसाद पूज्य स्वामीजी हमें दे रहे हैं; उसका रसास्वादन आप 'आत्मधर्म' द्वारा कर रहे हैं। [संपादक]

ज्ञान स्वसंवेद्य है

❀ पर को जानते समय जाननेवाला स्वयं अपने को ज्ञातास्वरूप से अनुभवता है, पररूप नहीं अनुभवता; इसप्रकार ज्ञान स्वयं स्वसंवेद्य है, स्वयं अपने से अपने को जानता

है—अनुभवता है। ज्ञान को स्वयं अपने को जानने के लिये अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ती।

❀ आत्मा का लक्षण ज्ञान है, वह ज्ञान स्वसंवेदन स्वभाववाला है, स्वयं पर को जानता है और अपने को भी ज्ञानस्वरूप से प्रसिद्ध करता है। 'मैं ज्ञान हूँ'—ऐसा स्वयं अपने में वेदन करता है। अन्य समस्त गुणों की भी ज्ञान ही प्रकाशित करके प्रसिद्ध करता है। ऐसा ज्ञान स्वयं राग को या जड़ को जानते हुए अपने को रागरूप या जड़रूप से प्रसिद्ध नहीं करता, परंतु अपने को ज्ञानचेतनारूप से ही प्रसिद्ध करता है। उस ज्ञान में अपने आत्मा के अनंत धर्मों को समावेश है।

❀ ज्ञान स्वसंवेद्य है, उसे अपने को अपना संवेदन करने में बीच में राग का, इंद्रियों का या दूसरे ज्ञान का आलंबन नहीं है। ऐसे ज्ञान के स्वसंवेदन में साथ ही आनंद है, वीतरागता है, प्रभुता है, स्वच्छता है—इसप्रकार अनंत धर्मों सहित ज्ञान अनुभव में आता है। ऐसा ज्ञान भगवान आत्मा को प्रसिद्ध करता है।

धर्मात्मा तो धीर हैं... गुण गंभीर हैं

सम्यक्त्व द्वारा शुद्ध आत्मा का अनुसरण करनेवाले आराधक जीव धीर होते हैं; धीर-गुण गंभीर ऐसे उन जीवों ने अपनी धी=बुद्धि को स्वभाव में प्रेरित किया है और संसार में विमुख कर दिया है, स्वभावोन्मुख हुए वे जीव श्रद्धा-ज्ञान-आनंदादि अनंत गुणों से गंभीर हैं, अनंत गुणों का परिणमन उनकी ज्ञानधारा में वर्त रहा है।—ऐसा सम्यक्त्व का आचरण चौथे गुणस्थान में प्रगट होता है, और वहाँ संसार मर्यादा में आ जाता है। वह जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निजगुण की आराधना द्वारा कर्मों की निर्जरा करके अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त करता है।

धर्मात्मा को दुःख होता है या नहीं ?

दोष कहो, दुःख कहो या मोह कहो; जिसप्रकार दर्शनमोह, वह दोष और दुःख है, उसीप्रकार चारित्रमोह भी दोष और दुःख है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो निर्मोह परिणाम है, उसकी आराधना, वह गुण की आराधना है, वह निर्दोष है, वह आनंदमय है। धर्मी को भी जितने चारित्रमोह के दोष परिणाम हैं, उतना दुःख ही है, उसका वेदन उसकी अवस्था में है;

और उसी समय सम्यक्त्वादि निजगुण की जितनी आराधना है, उतना सुख है।—इसप्रकार साधक को दोनों भावों की धाराएँ (एक सुखरूप धारा, दूसरी दुःखरूप धारा) एक पर्याय में वर्तती रहती हैं; उन्हें यथावत् जानना चाहिये।

धर्मात्मा को अकेला दुःख नहीं होता। जितनी आराधना है, उतना सुख तो उसके निरंतर वर्तता है। परंतु सम्यग्दर्शन हुआ, इसलिये फिर अस्थिरता के दोष का-मोह का भी दुःख उसे होता ही नहीं—ऐसा कोई कहे तो वह ठीक नहीं है; उसके भी जितना मोह है, उतना दोष है और उतना दुःखी भी है। और उसी समय राग से भिन्न, दुःख से भिन्न ऐसी जो ज्ञानचेतना उसके परिणमित हो रही है, उतना सुख भी उसे निरंतर वर्त रहा है। ऐसी आश्चर्यकारी साधकदशा है।

वस्तु की शोभा : अनेकांत का प्रभाव

[अनेकांत, वह जीवन : एकांत, वह मरण]

वस्तु की शोभा अपने स्वाधीन धर्मी द्वारा है। अपने अनंत धर्मों से अपना अस्तित्व सो वस्तु की शोभा है, और उस वस्तु को अपने स्वाधीन धर्म में स्थित रहने या परिणमित होने के लिये अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, वही वस्तु की स्वतंत्रता है और वही सच्ची शोभा है।

वस्तु का कोई धर्म दूसरे के आधीन हो तो उसमें वस्तु की स्वाधीनता भी नहीं है और शोभा भी नहीं है। धर्मी तो जानता है कि चेतन लक्षण से लक्षित मेरी चेतना में ही अपने अनंत धर्मों का परिणमन एकसाथ वर्तता है। मेरे परिणमन में पर का अभाव स्वयमेव है।—ऐसा अनेकांत स्वभाव का प्रभाव है।

अरे प्रभु! तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय में तेरा स्वाधीन-स्वतंत्र अस्तित्व भी तुझे भासित न हो तो भगवान अरिहंतदेव के शासन में आकर तूने क्या किया? भगवान अरिहंतदेव का शासन तो वस्तु का ऐसे अनेकांतस्वरूप से उपदेश करता है कि प्रत्येक वसतु अपने अनंत धर्म के अस्तित्वसहित अपने में परिणमित होती है; पर में वह अपना नास्तिपना रखकर परिणमित होती है। इसप्रकार स्वाधीन अस्तित्व बनाए रखकर प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में परिणमित होती है।—ऐसा अनेकांतमय वस्तुस्वरूप स्व-पर की भिन्नता बतलाकर भ्रम का नाश करता है और ज्ञानस्वरूप से अपना निर्बाध अनुभव कराता है।—यही आत्मा का जीवन

है। ऐसा ज्ञानमय सत्य जीवन अनेकांत द्वारा ही जिया जाता है। एकान्तवादियों को तो स्व-पर की भिन्नता ही भासित नहीं होती, इसलिये स्व-पर की एकताबुद्धिरूप मिथ्यात्व है, वहाँ ज्ञान-आनंदमय सच्चा जीवन कहाँ से होगा? इसलिये कहते हैं कि एकांत, वह भावमरण है और अनेकांत, वह चैतन्यमय जीवन है।

सर्वप्रकार के प्रयत्न द्वारा आत्मा को जानो

❀ वीर निर्वाण सं. 2500 ❀ सूत्रप्राभृत गाथा 16 ❀

जैनशासन में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि—अहो जीवो! अंतर के उद्यम द्वारा तुम आत्मा को जानो। आत्मा को जाने बिना जो भी शुभक्रियाएँ हैं, वे करने पर भी जीव संसार में ही भ्रमण करता है; शुभराग की क्रियाएँ भी अनिष्ट फल देनेवाली हैं; इसलिए हे जीवो! तुम प्रयत्नपूर्वक आत्मा का स्वरूप जानकर उसकी श्रद्धा करो... उसके द्वारा तुम्हें मोक्ष प्राप्त होगा।

जैनशासन तो सम्यक्त्वादि शुद्धभाव में है; राग में या जड़ की क्रिया में जैनशासन नहीं है। जैनशासन में भगवान ने मोहरहित सम्यक्त्वादि शुद्धभाव को ही धर्म और मोक्षमार्ग कहा है, शुभराग को जैनशासन में पुण्य कहा है, परंतु उसे मोक्षमार्ग नहीं कहा। शुभराग तो मोह का अंश है, वह कहीं मोक्षमार्ग का या धर्म का अंश नहीं है। इसलिये हे भव्य! तू भावपूर्वक शुद्धभाव को जान। प्रयत्नपूर्वक आत्मा के स्वरूप को जान.. उसके द्वारा मोक्ष होगा। आत्मा को जाने बिना शुभराग की क्रियाओं द्वारा कहाँ मोक्ष नहीं होगा, संसार-भ्रमण ही होगा। इसलिये हे भव्य! मोक्ष के हेतु तू आत्मा को जानने का उद्यमी हो।

मोक्ष का कारण तो शुद्ध आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान-आचरण हैं, राग कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। प्रथम आत्मा के स्वरूप का विचार होता है कि—मैं ज्ञान हूँ; राग और ज्ञान एक स्वादवाले नहीं किंतु भिन्न स्वादवाले हैं;—इसप्रकार भेदज्ञान के विचार के समय साथ में विकल्प होते हैं, परंतु वहाँ आत्मा को जानने का कार्य तो ज्ञान करता है। ज्ञान का कार्य विकल्प से भिन्न है। उस ज्ञान के बल से विकल्प से भिन्न चिदानंद आत्मा अनुभव में आता है। इसप्रकार ज्ञान द्वारा आत्मा को जानकर उसकी श्रद्धा करो, उसके द्वारा तुम शीघ्र मोक्ष को प्राप्त होगे।

जिसे मोक्ष इष्ट हो उसे आत्मा को इष्ट करना चाहिये। जो आत्मा को इष्ट करे, वह सर्व

प्रयत्न से मोक्ष को जानता है, उसकी श्रद्धा करता है, उसकी अनुभूति करता है। इसलिये हे मोक्षार्थी! आत्मा को इष्ट करके उसमें उद्यम लगाना, अपने श्रद्धा-ज्ञान को अन्यत्र कहीं मत रोकना। अरे, प्रयोजनभूत आत्मा के ज्ञान-श्रद्धान बिना दूसरे बाह्याडम्बर का या पुण्य का तुझे क्या काम है? जिनसे मोक्ष की सिद्धि नहीं होती, ऐसी उन बाह्य भावों का प्रेम छोड़ और तीन प्रकार के आत्मा को ही इष्ट करके उद्यम द्वारा उसी को जान तथा उसी की श्रद्धा कर। मोक्ष का कारण तो शुद्धभाव है और वह शुद्धभाव तो आत्मा को जानने से ही होता है; इसलिये हे भव्य, मोक्ष के हेतु तू प्रयत्नपूर्वक आत्मा को जान।

पाठकों से वार्तालाप और तत्त्वचर्चा

इस विभाग द्वारा अनेक प्रकार की चर्चा तथा जिज्ञासुओं के विचार जानकर आपको प्रसन्नता होगी। आप भी जिज्ञासुभाव से अपने प्रश्न या चर्चाएँ इस विभाग के लिये भेज सकते हैं। संपादक को आत्मधर्म के योग्य लगेंगे, उन्हीं प्रश्नों के उत्तर दिये जायेंगे।

समयसार का फल

समयसार के सच्चे अभ्यास का फल क्या है?

आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय आनंदमय सुखरूप हो जाता है, वह समयसार का महामंगल फल है। आत्मा स्वयं परब्रह्म, सकल वस्तु का प्रकाशक है, उसका इस शब्दब्रह्म (समयसार) द्वारा निर्णय करके, उसमें स्थिर होने से आत्मा स्वयं परमसुखरूप से परिणमित होता है। ऐसे मंगल आशीर्वचन पूर्वक आचार्यदेव ने समयसार पूरा किया है।

सर्वार्थसिद्धि के देव

सर्वार्थसिद्धि के कितने देव होते हैं ?

— सर्वार्थसिद्धि में संख्यात देव होते हैं।

सर्वार्थसिद्धि विमान कितना बड़ा है ?

— वह इस जम्बूद्वीप जितना ही अर्थात् एक लाख योजन व्यास का है। यह माप भी यही सूचित करता है कि वहाँ रहनेवाले सर्वार्थसिद्धि देव संख्यात ही हैं असंख्यात नहीं। और वे सब देव नियमा सम्यग्दृष्टि तथा एकावतारी हैं।

नियमा और भजनीय

'नियमा' और 'भजनीय' का अर्थ बतलाईये।

अमुक स्थान पर कोई वस्तु अवश्य होती ही है—ऐसा नियम होना वह 'नियमा' कहा जाता है। और अमुक स्थान पर कोई वस्तु होती भी है और नहीं भी होती—ऐसी स्थिति को 'भजनीय' कहते हैं।

उनके कुछ दृष्टांत—

(1) जहाँ केवलज्ञान हो, वहाँ वीतरागता (नियमा) होती ही है।

(2) वीतरागता हो, वहाँ केवलज्ञान भजनीय है, अर्थात् वह हो अथवा न भी हो;

—जैसे कि—बारहवें गुणस्थान में वीतरागता है परंतु केवलज्ञान नहीं है;

— तेरहवें गुणस्थान में वीतरागता है और केवलज्ञान भी है।

(3) सम्यक्चारित्र (मुनिदशा) हो, वहाँ सम्यग्दर्शन होता ही है (नियमा)।

—क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना किसी जीव को मुनिदशा नहीं होती।

(4) सम्यग्दर्शन हो, वहाँ मुनिदशा भजनीय है (हो अथवा न भी हो)—क्योंकि अनेक जीवों को सम्यग्दर्शन होने पर भी मुनिदशा नहीं होती।

(5) राग हो, वहाँ जीव होता ही है (नियमा); क्योंकि जीव के अभाव में कहीं राग नहीं होता।

(6) जीव हो, वहाँ राग हो या न भी हो (भजनीय)। जैसे कि—सिद्धदशा में जीव है परंतु राग नहीं है; अरिहंत भगवान जीव हैं परंतु राग नहीं है।

(7) केवलज्ञान हो, वहाँ संसारीपना भजनीय है। जैसे कि—अरिहंतों को केवलज्ञान है और संसारीपना है;—सिद्धभगवंतों को केवलज्ञान है किंतु संसारीपना नहीं है।

(8) संसारीपना हो, वहाँ केवलज्ञान भजनीय है। जैसे कि—तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान में संसारीपना है और केवलज्ञान भी है;

—निचले गुणस्थानों में संसारीपना है परंतु केवलज्ञान नहीं है।

(9) अरिहंतों को तीर्थंकरप्रकृति का उदय भजनीय है—किन्हीं अरिहंतों को वह होता है और किन्हीं को नहीं होता।

(10) तीर्थंकरों को अरिहंतपना नियमा होता है... क्योंकि सर्व तीर्थंकर केवलज्ञान द्वारा अरिहंत हुए हैं।

(11) जीव को असंख्यप्रदेशीपना नियमा होता है।

(12) असंख्यप्रदेशीपने में जीवपना भजनीय है। (क्योंकि असंख्यप्रदेशीपना होने पर भी धर्मास्तिकायादि को जीवपना नहीं है, वे अजीव हैं।)

यहाँ नियमा तथा भजनीय के संबंध में बारह उदाहरण दिये हैं। अब, आपकी समझ पक्की करने के लिये निम्नोक्त दस उदाहरणों में भी, वे नियमरूप हैं या भजनीय हैं—उनका विचार करो:—

(1) योग का कम्पन हो, वहाँ केवलज्ञान.... (नियमा या भजनीय ?)

(2) केवलज्ञान हो, वहाँ पंचेन्द्रियपना... (विचारकर कहो)

(3) सम्यग्ज्ञान हो, वहाँ राग....

(4) अरूपीपना हो, वहाँ चेतनपना....

(5) चेतनपना हो, वहाँ अरूपीपना...

(6) केवलज्ञान हो, वहाँ परम औदारिक शरीर...

(7) जीव का लोकव्यापकपना....

(8) जीव में राग...

(9) जीव में ज्ञान....

(10) अयोगीपना हो, वहाँ केवलज्ञान....

[विचार करके रिक्तस्थानों में उत्तर लिख रख। इन्हें संपादक को भेजने की आवश्यकता नहीं है। अगले अंक में उत्तर छपेंगे उनके साथ मिलान कर लें।]

मरुदेवी माता कहाँ हैं ?

ऋषभदेव भगवान की माताजी मरुदेवी का जीव वर्तमान में कहाँ है ?

— वह जीव इस समय मोक्ष में है।

स्त्री को मोक्ष तो नहीं होता, तब फिर मरुदेवी माता मोक्ष में कैसे गईं ?

स्त्रीपर्याय में मोक्ष नहीं होता, यह सच है और मरुदेवी माता का जीव इस समय मोक्ष में है, यह भी सच है। अजितनाथ भगवान मोक्ष पधारे, उनसे असंख्य वर्ष पूर्व मरुदेवी माता के आत्मा ने मोक्ष प्राप्त किया है। वह इसप्रकार:—प्रथम तो तीर्थंकरों की माताजी नियम से मोक्षगामी होती हैं। मरुदेवी माता उसी भव में आराधक होकर, स्त्रीपर्याय का छेद करके स्वर्ग में महान देव हुईं, वहाँ से कुछ ही सागरोपम में निकलकर मनुष्य होकर मुनिदशा धारण करके मोक्ष प्राप्त किया। इसलिये ऋषभदेव भगवान के कुछ ही सागरोपम पश्चात् वे मोक्ष को प्राप्त हुईं। जबकि—अजितनाथ भगवान तो ऋषभदेव के पश्चात् पचास लाख करोड़ सागरोपम बीतने के बाद हुए। इसलिये मरुदेवी माता का आत्मा अजितनाथ भगवान से असंख्य वर्ष पूर्व मोक्ष को प्राप्त हुआ है। इस समय वे सिद्धालय में सिद्धरूप में विराजमान हैं।

उन सिद्ध भगवंत को नमस्कार हो!

उत्तम अवसर

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये, आत्मा को पहिचानने के लिये, यह काल कैसा है ?

भाई, आत्मा को पहिचानने और सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये इस काल तुझे उत्तम अवसर प्राप्त हुआ है, इस अवसर को चूकना मत। ऐसा सुंदर जैनधर्म, ऐसे सुंदर देव-गुरु तुझे

मिले, तो सम्यग्दर्शन के लिये इससे अच्छा अवसर दूसरा क्या होगा? इसलिये इस अवसर को तू अवश्य सफल करना।

आत्मा का अद्भुत रस कैसा है?

आत्मा में श्रद्धा-ज्ञान-आनंदादि अनंत गुणों का एक साथ आस्वादन होता है, वही अद्भुत रस है। दर्शन सामान्य का ग्राहक है और ज्ञान विशेष का ग्राहक है, दोनों गुणों के कार्य में भेद है, तथापि अभेद अनुभूति में उन सब गुणों के रस का एकरूप से आस्वादन होता है, अनंत गुणों के रस का समावेश स्वानुभूति में होता है, वही अद्भुत रस है। स्वानुभवरस की अद्भुतता को सम्यग्दृष्टि ही जानता है।

आत्मा का निर्णय कैसे हो?

जिस चैतन्यस्वभाव का निर्णय करना है, उसी के अंश द्वारा उसका निर्णय होता है। ज्ञानानंदस्वभाव के सन्मुख होकर उसका निर्णय करने पर पर्याय में उसके अंश का वेदन हुआ है; ज्ञान-आनंदरूप हुआ अंश पूर्ण-ज्ञानानंदस्वरूप का निर्णय करता है। राग, वह कोई ज्ञान का अंश नहीं है, इसलिये राग द्वारा ज्ञानस्वभाव का निर्णय नहीं होता। अंतर्मुखी ज्ञान द्वारा ही ज्ञानस्वभाव का निर्णय होता है; वह अपूर्व है।

निर्भय और नि:शंक कौन है?

जो आत्मा के स्वभाव में नि:शंक है, उसे भय क्या?

और जो निर्भय है, उसे शंका कैसी?

सम्यग्दृष्टि जीव स्वरूप में नि:शंक है, इसलिये मरणादि के भय से रहित निर्भय है, उन्हें शंका नहीं होती कि मेरा मरण हो जायेगा!

ऐसे सम्यग्दर्शन द्वारा मोक्ष का उत्सव मनाने के लिये सब साधर्मी अवश्य आयें,—ऐसा श्रीगुरु का आमंत्रण है।

सम्यक्चारित्र और सम्यग्दर्शन

❀ सम्यक्चारित्र का मूल्य अधिक है या सम्यग्दर्शन का?

—सम्यग्दर्शन की अपेक्षा सम्यक्चारित्र अधिक पूज्य है।

❀ सम्यक्चारित्ररूप मुनिदशा कब होती है ?

—पहले सम्यग्दर्शन होता है, उसके पश्चात् सम्यक्चारित्ररूप मुनिदशा होती है।

❀ सम्यग्दर्शन न हो तो ?

—तो सम्यग्दर्शन के बिना चारित्रदशा या मुनिपना नहीं हो सकता।

❀ सम्यग्दर्शन हो परंतु चारित्रदशा न हो तो ?

—तो आराधकभाव बना रहेगा, किंतु मोक्ष नहीं होगा।

❀ मोक्ष का मूल कौन है ?

—चारित्र के बिना मोक्ष नहीं है और सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र नहीं है; इसलिये मोक्ष का मूल सम्यग्दर्शन है।

❀ सम्यग्दर्शन कब होता है ?

— अरिहंतदेव के शुद्ध आत्मा का सच्चा स्वरूप पहिचाने, उनके कहे हुए जैनधर्म को बराबर जाने, और जैनदर्शन में कहे हुए आत्मा के शुद्धस्वरूप को पहिचाने तब सम्यग्दर्शन होता है।

❀ सम्यग्दर्शन का मूल्य कितना ?

—आह, उसकी महिमा का क्या कहना! सिद्ध भगवंतों के अतीन्द्रियसुख की बानगी जिसने चख ली है और अनादिकाल के विकार भावों से जो पृथक् हो गया है, वह सम्यग्दर्शन चैतन्य के अनंत गुणों के स्वाद से भरपूर है, उसकी अपार महिमा विकल्पातीत है—वचनातीत है। जब सम्यग्दर्शन की इतनी महिमा है, तब सम्यक्चारित्र के माहात्म्य की क्या बात! अव्रती सम्यग्दृष्टि भी ऐसा महिमावंत है तो फिर सम्यक्चारित्रवंत मुनि-भगवंतों की अपार महिमा का क्या कहना!—उन्हें नमस्कार हो।

धर्म का बीज और फल

❀ आत्मा में धर्म के बीज बोये हों तो वे कब फल देते हैं ?

—अहा, धर्म का बीज तो बोने के साथ ही फल देता है,—उसी समय जीव को शांति के वेदनरूप फल आता है।

ज्ञानचेतना

❀ धर्मी को ज्ञानचेतना कब होती है ?

—निरंतर होती है। उपयोगरूप ज्ञानचेतना भले ही कभी-कभी हो, परंतु राग और ज्ञान की भिन्नता के वेदनरूप ज्ञानचेतना तो उसके अंतर में निरंतर परिणमित हो ही रही है।

❀ ज्ञानी को कर्मचेतना और कर्मफलचेतना होती है ?

—हाँ; दो प्रकार से होती है:—

(1) ज्ञानादि की शुद्धतारूप जो शुद्धकार्य हुआ है, उसके अनुभवरूप शुद्ध कर्मचेतना ज्ञानी को होती है; तथा उसके फलरूप आनंद का वेदन है, ऐसी शुद्ध कर्मफलचेतना भी ज्ञानी को है। इसप्रकार ज्ञानी को शुद्ध कर्मचेतना तथा शुद्ध कर्मफलचेतना होती है। (यह कर्मचेतना या कर्मफलचेतना मोक्ष का कारण है।)

(2) अभी ज्ञानी को भी जितने रागादिभाव होते हैं, उतनी अशुद्ध कर्मचेतना है, तथा जितना हर्ष-शोक का वेदन है, उतनी अशुद्ध कर्मफलचेतना भी है। (यह कर्मचेतना तथा कर्मफलचेतना बंध का कारण है।)

❀ साधकदशा में ऐसी दोनों (शुद्ध तथा अशुद्ध) चेतना होती है।

❀ अज्ञानी को अकेली अशुद्ध कर्मचेतना तथा कर्मफलचेतना होती है।

❀ वीतराग को अकेली शुद्ध कर्मचेतना तथा कर्मफलचेतना होती हैं।

वीर-निर्वाण के इस ढाई हजारवें वर्ष में ज्ञानचेतना की आराधना करके
वीर प्रभु के निर्वाण मार्ग में चलो!

अनेकांत का चमत्कार

[श्री समयसार : 14 बोलों के प्रवचन से]

❀ गुरुदेव बारंबार कहते हैं कि—अहा, अनेकांत, वह जैन सिद्धांत का प्राण है।

❀ अनंतगुणों की गंभीरता अनेकांत में विद्यमान है।

❀ 'ज्ञान' लक्षण है, वह अनेकांतस्वरूप आत्मा को प्रसिद्ध करके सच्चा जीवन जिलाता है।

❀ अनेकांत में चैतन्य के वीतरागी अमृत का स्वाद है।

❀ 'मैं ज्ञान हूँ'—ऐसी अस्ति के वेदन में, 'ज्ञान से विरुद्ध अन्य भावोंरूप से मेरा ज्ञान नहीं है'—ऐसे नास्तिधर्म का वेदन भी आ जाता है। इसप्रकार वस्तु स्वयमेव अनेकांतरूप से प्रकाशती है।

❀ ज्ञान से विरुद्ध अन्य भावों की नास्ति यदि न आये तो ज्ञान का अस्ति का भी निर्णय सच्चा नहीं है।

❀ 'ज्ञान' कहने से ज्ञान के साथ के श्रद्धा-अस्तित्व-आनंद-प्रभुता आदि अनंत धर्म तो अनेकांत के बल से उसमें आ जाते हैं; इसलिये आत्मा को 'ज्ञानमात्र' कहने से भी एकांत नहीं हो जाता, परंतु वहाँ अनेकांतपना स्वयमेव प्रकाशता ही है।

❀ ज्ञानलक्षण ऐसा निर्दोष है कि वह आत्मा को आत्मारूप से प्रसिद्ध करता है और परभावों से आत्मा को भिन्न रखता है।

❀ ज्ञान को अपनी शक्ति है कि—अपने को तथा परज्ञेयों को भी जानता है; परंतु वहाँ परज्ञेय तो पररूप से हैं, वे ज्ञानरूप नहीं हैं। ज्ञान स्वयं अपने को ज्ञानरूप से प्रकाशता है, वह अपने को ज्ञेयरूप से प्रसिद्ध नहीं करता।—ऐसी भिन्नता की प्रतीति ही अनेकांत है, वह जैनधर्म का चिह्न है।

❀ तेरा असंख्यप्रदेशी ज्ञानक्षेत्र वह एक अखंड है, उस स्वक्षेत्र में परक्षेत्र का प्रवेश नहीं है; ज्ञान स्वक्षेत्र से बाहर निकलकर परक्षेत्र में नहीं जाता; तथा ज्ञान का एक स्वक्षेत्र अनेक

ज्ञेयों द्वारा कहीं छिन्न-भिन्न नहीं हो जाता।

❀ ज्ञान, ज्ञान के आधार से है, वह ज्ञेय के आधार से नहीं है। अहो, अनेकांत में स्वाधीनता है, निर्भयता है, अपने से ही पूर्णता है।

❀ एकांतमत में स्व-पर की मिलावटरूप धोखा है; अनंकातमार्ग तो निर्दोष मार्ग है, वह स्व-पर की, जरा भी मिलावट नहीं करता।

❀ ज्ञान में एकपना और अनेकपना दोनों स्वभाव एकसाथ वर्तते हैं; इसीप्रकार ज्ञान में (ज्ञानस्वरूप आत्मा में) नित्यपना और अनित्यपना दोनों स्वभावधर्म एकसाथ वर्तते हैं; उनमें से एक भी स्वभाव को निकाला नहीं जा सकता।

❀ ज्ञान का सत्पना अर्थात् आत्मा का जीवन किसी दूसरे के कारण नहीं है, परंतु स्वयमेव—स्वयं ही सत् है। अन्य रूप से तो ज्ञान असत् है। बस, ऐसे सत्-असत्पने का निर्णय करनेवाला ज्ञानी अपने स्वतत्त्व में ही दृष्टि लगाता है। जहाँ अपनी अस्ति नहीं है, वहाँ दृष्टि कौन लगाये? इसप्रकार अनेकांत का फल स्वसन्मुखता है; स्वसन्मुखता में वीतरागता है और वीतरागता का फल मोक्ष है।

❀ परक्षेत्र में स्थित अनंत ज्ञेयपदार्थों को जानने पर भी ज्ञान तो अपने स्वक्षेत्र में ही विद्यमान है, ज्ञान स्वक्षेत्र से बाहर बिलकुल नहीं गया है। चाहे जितने दूर के पदार्थ को जाने परंतु ज्ञान कहीं आत्मा से दूर नहीं जाता; वह तो अभिन्नरूप से आत्मा के स्वक्षेत्र में ही है। ज्ञान का और आत्मा का क्षेत्र कभी किंचित् पृथक् नहीं है और परवस्तु आत्मा के स्वक्षेत्र में कभी आती नहीं है।

❀ ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव करने के लिये दृष्टि भीतर अपने स्वक्षेत्र में स्थिर होती है, कहीं बाह्य में नहीं जाती, इसप्रकार स्वक्षेत्र में ही ज्ञान का अस्तित्व है और परक्षेत्र में नास्तित्व है; ज्ञान में ऐसा अस्ति-नास्तिपना स्वभाव से ही है। इसका नाम अनेकांत है।

❀ ज्ञान और ज्ञेय दोनों का परिणमन भिन्न-भिन्न अपने-अपने स्वकाल में ही है। परज्ञेय का परिणमन ज्ञान में नहीं आता और ज्ञान का परिणमन परज्ञेय में नहीं जाता। स्वपरिणमन में उत्पाद-व्यय हों, उससे कहीं ज्ञान का नाश नहीं हो जाता; ज्ञान तो

अपने स्वकाल में परिणमित होता ही रहता है। ज्ञेयों का नाश होने से अज्ञानी अपना नाश मान लेता है, उसे ज्ञेयों से अपना भिन्न परिणमन बतलाकर अनेकांत जीवंत रखता है।

❀ ज्ञान का जीवन पर ज्ञेय के अवलंबन से नहीं है; इसलिये ज्ञेय के नाश से ज्ञान नष्ट नहीं हो जाता; ज्ञान तो अपने ज्ञानस्वभाव के आधार से ही परिणमित होता हुआ जीवंत वर्तता है—ऐसे ज्ञान को धर्मी जीव अनेकांतदृष्टि से देखता है, इसलिये पर्याय का परिवर्तन होने पर भी उसे अपने नाश की शंका नहीं है, भय नहीं है।

❀ अनेकांतरूप प्राण के बिना तो सब मृतक समान अर्थात् मिथ्या है। अनेकांत, वह सम्यक् जीवन है, उसमें पर से भिन्न अपने अनंत चैतन्यभावोंसहित आत्मा सत्रूप से वेदन में आता है और सम्यक्दर्शन-ज्ञान-आनंदादि प्रगट होते हैं।

❀ ज्ञान का अस्तित्व ज्ञानभाव में है; ज्ञान का अस्तित्व रागभाव में नहीं है। ज्ञानभावरूप से आत्मा है और रागादि परभावरूप से आत्मा नहीं है—ऐसा अपूर्व भेदज्ञान अनेकांत के बल से ही होता है। ज्ञान, वह ज्ञान है और ज्ञान, वह राग भी है—ऐसा अनुभव में नहीं आता। ज्ञान के अनुभव में राग का अनुभव नहीं है और राग के वेदन में ज्ञान का वेदन नहीं है—इसप्रकार दोनों का स्वरूप बिलकुल भिन्न है, उसकी पहिचान, वह अनेकांत है, वह भगवान अरिहंतदेव का शासन है।

❀ नित्यपना और अनित्यपना—यह दोनों धर्म भी ज्ञान में एक साथ वर्तते ही हैं। ज्ञान में से अनित्यता निकाल देना चाहे तो एकांत नित्य ज्ञान भी नहीं रह सकता। स्थित रहना और परिणमित होना अर्थात् नित्यता और अनित्यता—ऐसा अनेकांतपना वह ज्ञान का स्वरूप ही है।

❀ अनेकांत धर्मों से परिपूर्ण ऐसे अनेकांतमय ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानने पर भगवान आत्मा स्वानुभूति में अनंत निर्मलभावों सहित प्रसिद्ध होता है।—ऐसी आत्मप्रसिद्धि, वह महावीर प्रभु का मार्ग है।

'जय महावीर!'

श्री महावीर-कुन्दकुन्द परमागममंदिर
पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति, सोनगढ़

सूचित करते हुए हर्ष होता है कि सोनगढ़ में श्री महावीर-कुन्दकुन्द परमागममंदिर का नव-निर्माण हो रहा है, जो भारतवर्ष में अद्वितीय एवं भव्य होगा। उक्त परमागममंदिर का उद्घाटन एवं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव फाल्गुन शुक्ला 5 तारीख 27-2-74 से फाल्गुन शुक्ला 13 तारीख 6-3-74 तक मनाने का निर्णय किया गया है। कृपया, आप अपने तथा आस-पास के नगरों के मंदिरों, संस्थाओं एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों के पूरे पते हमें भिजवा देवें, ताकि सभी को आमंत्रण-पत्रिका भेजी जा सके। आशा है आप अविलंब पते भेजकर व्यवस्था में सहयोग देंगे।

मंत्री—
प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

—: सूचना :—

'श्री कुन्दकुन्द-कहान कोआ० हाउसिंग सोसायटी', सोनगढ़ की ओर से सूचित किया जाता है कि—इस सोसायटी में करीब 20000) बीस हजार रुपये लागत के 500 वर्ग फीट के छोटे मकान बनाने का भी निर्णय किया गया है; जिन्हें ऐसा मकान लेने की इच्छा हो वे बैंक ऑफ इण्डिया, सोनगढ़ का 3351) का ड्राफ्ट एन.सी. जवेरी एण्ड अदर्स के नाम से भिजवा देवें। —व्यवस्थापक

विविध समाचार

सोनगढ़ — तारीख (24-12-73) परम उपकारी पूज्य गुरुदेव सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रवचन में प्रातः अष्टपाहुड़ और दोपहर में समयसार चलता है। परमागम मंदिर का उद्घाटन तथा भगवान महावीर पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा महोत्सव विशाल आयोजन पूर्वक फाल्गुन सुदी 5 से 13 तक होनेवाला है; उसकी समुचित व्यवस्था करने के लिये तैयारियाँ होने लगी हैं; जिनका विवरण इसी अंक में टाइटिल पृष्ठ 2 तथा 4 पर दिया है।

— ग्वालियर निवासी श्री पंडित धन्नालालजी ने पिछले दिनों बंडा, बरायठा, शाहगढ़, द्रोणगिर आदि स्थानों पर आकर यहाँ के समाज को अपने आध्यात्मिक-प्रवचनों से लाभान्वित किया। पंडितजी प्रतिवर्ष 15-20 दिन का अमूल्य समय देकर हमें लाभान्वित करते हैं। हम पंडितजी के तथा सोनगढ़ की संस्था के अत्यंत आभारी हैं।

— विदिशा में वाणीभूषण पंडित ज्ञानचंदजी तथा भोपाल में श्री पंडित राजमलजी का स्वास्थ्य अच्छा न होने से मध्यप्रदेश मुमुक्षु मंडल उनके स्वास्थ्य लाभ की कामना करता है। —गोविन्ददास जैन, खड़ेरी

बीना-बजरिया—तारीख 13-11-73 पंडित धन्नालालजी (लश्कर निवासी) पधारे थे, तीन दिन ठहरे। प्रतिदिन तीन बार आध्यात्मिक प्रवचन तथा शंका-समाधान सहित चार कार्यक्रम चलाये, एक दिन बीना इटावा जिनमंदिर में कार्यक्रम रखा था, रात्रि को वीतराग विज्ञान पाठशाला के उत्तीर्ण छात्रों को पंडितजी के शुभहस्त से पुरस्कार दिये गये। सभी ने सोनगढ़ संस्था का और पंडितजी का आभार प्रगट किया।

❀ ❀ ❀

गुलबर्गा—(तारीख 15-12-73) प्रचारक श्री ब्रह्मचारी दीपचंदजी लिखते हैं कि मैं मलकापुर के बाद आकोला, बासीम, फालेगाँव, हींगोली, नांदेड, मुलखेड, धर्माबाद, बार्सी, मुरुड होकर सोलापुर में दो दिन रहकर पश्चात् अकलकोट, आलंद होकर गुलबर्गा आया हूँ।

खास-खास नगरों में प्रचार-कार्य चालू है। साथ-साथ फाल्गुन में सोनगढ़ में होनेवाले पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव एवं परमागममंदिर के उद्घाटन में आने का, आमंत्रण तथा जानकारी प्रत्यक्ष दे रहा हूँ; क्योंकि इधर का समाज पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के बारे में विशेष परिचित नहीं है। इधर से अनेक मुमुक्षु प्रतिष्ठा-महोत्सव के समय सोनगढ़ आना चाहते हैं।

—ब्रह्मचारी दीपंचद जैन

छप रहा है

— **श्री मोक्षमार्गप्रकाशक**—(आचार्यकल्प श्री पंडित टोडरमलजीकृत) डा. हुकमचंदजी शास्त्री, एम.ए., जयपुर की विस्तृत प्रस्तावना सहित छप रहा है।

—: सूचना :—

जिन मुमुक्षु मंडलों के पास श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ के प्रकाशनों का स्टाक बिक्री के लिये हो, वे हमें उस साहित्य की सूची अवश्य भिजवा देवें। तथा यह भी सूचित करें कि प्रत्येक पुस्तक की कितनी प्रतियाँ हैं। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव के अवसर पर पुस्तकों की आवश्यकता होने से हम वह साहित्य मँगवा लेंगे।

प्रकाशन समिति—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आत्मधर्म की आजीवन सदस्य योजना

आत्मधर्म मासिक-पत्र के ग्राहक हजारों की संख्या में हैं। आत्मधर्म का अधिक से अधिक प्रचार हो और उसके ग्राहकों को प्रतिवर्ष वार्षिक शुल्क भेजने का कष्ट न हो तथा संस्था को भी व्यवस्था में सुविधा रहे, इस हेतु 101) रुपये की 'अजीवन सदस्य' योजना चालू की गई है। इस योजना के अंतर्गत सदस्यों को आजीवन बिना वार्षिक चंदा के 'आत्मधर्म' भेजा जायेगा। जो सज्जन इस योजना से लाभ उठाना चाहते हैं, वे निम्न पते पर 101) रुपया भेजकर इस योजना में सम्मिलित हो जायें। यह योजना गुजराती तथा हिंदी दोनों भाषाओं के 'आत्मधर्म' के लिये है।

पता— श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र), जिला-भावनगर

आजीवन सदस्यों की नामावली

81 श्री वीणाबहिन सराफ खंडवा
82 श्री सीमंधरजी जैन शिक्षक, खंडवा
83 श्री मालतीबाई जैन, खंडवा
84 श्री चंपाबाई जैन, खंडवा
85 श्री मोतीलाल गुलाबसाजी जैन, मलकापुर
86 श्री उमराव जैन, राजनाँदगाव
87 श्री चंद्रकलाबेन, भिलाई
88 श्री कमलादेवी पाटनी, छिंदवाडा
89 डा. सुमेरचंद जैन, दमोह
90 चौधरी प्रकाशचंद्र जैन, सागर
91 श्री सत्येन्द्रकुमार जैन, दिल्ली
92 श्री चोखलिया मथुरालाल जैन, इंदौर
93 श्री धनपालसिंहजी जैन सर्राफ, हरियाणा
94 श्रीमती कुसुमलता पाटनी, छिंदवाड़ा
95 श्री इंद्रचंदजी हजारीलाल जैन, इंदौर
96 श्री केसरीमल जैन पाटनी, ग्वालियर
97 श्री सेठ भगवानदास शोभालाल जैन, सागर
98 श्री दीपचंदजी भोगीलालजी (भदावत), उदयपुर
99 श्री महेन्द्रकुमारजी जैन मलैया, सागर
100 चौधरी नाथूरामजी मानकचौकवाले, सागर
101 श्री नेमचंदजी कमलकुमार जैन, सागर
102 श्री प्रदीपकुमारजी जैन, होशंगाबाद
103 श्री आदित्यकुमार जैन, सागर
104 श्री जैचंद्रजी लोरडे, हैदराबाद
105 श्री दिगंबर जिनमंदिर, रायपुर
106 श्री दिगंबर जिनमंदिर, दुर्ग
107 श्री प्रकाशवती भीखूराम जैन, दिल्ली-6
108 दिगंबर जिनमंदिर दीवान भदीयचंदजी, जयपुर
109 श्री राजनारायण जैन सर्राफ, शाहगंज
110 श्री नेमीसा गुलाबसा जैन, शाहपुर
111 श्रीमती सरोजबहन धर्मपत्नी—
श्री नेमीचंद जैन, खंडवा
112 श्री समकितकुमार जैन श्री रा.ब.
फकीरचंदजी जैन, खंडवा
113 श्री सुरेन्द्रकुमार अशोककुमार जैन
ईश्वरचंदजी सर्राफ, सनावद (म.प्र.)
114 श्री रतनलालजी जैन, एडवोकेट, गौहाटी
115 श्री कपूरचंद जैन, गौहाटी (आसाम)
116 श्री महावीर मिष्टान्न भंडार, गुना
117 श्री पन्नालाल जैन, खैरागढ़
118 श्री खेमचंद शिखरचंद जैन, सागर
119 श्री मिमिस रुखमिनी एच. जैन, जलगाँव
120 श्री तारणतरण दिगम्बर जैन चैत्यालय, सागर
121 कुमारी श्री आक्काताई अण्णू पाचोरे, सोलापुर
122 श्री अमरचंदजी जैन गंगवाल, जयपुर-3
123 श्रीमती इंद्राकुमारी बाज, कोटा
124 श्री रतनचंदजी जैन पहाडीया, बंबई-2
125 श्री कस्तूरचंद भलेचंद जैन, मद्रास-1

स्व. कविवर दीपचंदजी कृत

ज्ञान-दर्पण

[गतांक से चालू]

(सामायिक के छह भेद)

सुभ वा असुभ नाम जागैं समभाव करैं, भली बुरी थापना मैं समता करीजिए।
चेतन अचेतन वा भलो बुरो द्रव्य देखि, धारिकैं विवेक तहाँ समता धरीजिए।
शोभन अशोभन जो ग्राम वन मांहि सम, भले बुरे समै हू मैं समभाव कीजिए।
भले-बुरे भावनि मैं कीजे समभाव जहाँ, सामायिक भेद षट् यह लखि लीजिए ॥103॥

करम कलंक लगि आयौ है अनादि ही कौ, यातैं नहिं पाई ज्ञानदृष्टि परकाशनी।
गति गतिमाहिं परजाय ही कौं आपौ मान्यौ, जानी न स्वरूप की है महिमा सुभासनी।
रंजक सुभावसेती नाना बंध करै जहाँ, परि परफंद थिति कीनी भववासनी।
भेदज्ञान भये मैं स्वरूप मैं संभारि देखी, मेरी निधि महा चिदानंद की बिलासनी ॥104॥

महा रमणीक ऐसौ ज्ञानज्याति मेरौ रूप, सुद्ध निजरूप की अवस्था जो धरतु है।
कहा भयौ चिरसौं मलीन ह्वैके आयौ तौउ, निश्चै निहारे परभाव न करतु है।
मेघ घटा नभमाहिं नाना भाँति दीसतु है, घटासौं ना होय नभ शुद्धता बरतु है।
कहै 'दीपचंद' तिहुँलोक प्रभुताई लिए, मेरे पद देखें मेरो पद सुधरतु है ॥105॥

काहे परभावन मैं दौरि दौरि लागतु है, दशा परभावन की दुखदाई कही है।
जगमाहिं दुःख परसंग से अनेक सहै, तातैं परसंग तोकौं त्याग जोगि सही है।
पानी के विलोएँ कहुँ पाइए घिरत नाहिं, काँच न रतन होय ढूंढो सब मही है।
यातैं अवलोकि देखि तेरेही स्वरूप की सु, महिमा अनंतरूप महा बनि रही है ॥106॥

श्री भगवान महावीर 2500 वाँ निर्वाण महोत्सव अंतर्गत

श्री महावीर-कुन्दकुन्द परमागम मंदिर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

माननीय महोदय !

सहर्ष निवेदन है कि श्री परमागमंदिर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव फागुन शुक्ल 5 से 13 तारीख 27-2-74 से 6-3-74 तक मनाने का निर्णय हो चुका है। उक्त प्रतिष्ठा-महोत्सव की व्यवस्था के लिए 40 कमेटियों का निर्माण भी हो चुका है, प्रतिष्ठा-महोत्सव की तैयारियाँ बहुत ही जोरशोर से चल रही हैं। इस महान एवं ऐतिहासिक उत्सव की आमंत्रण-पत्रिका लिखने का विशेष आयोजन किया जावे, ऐसा निर्णय हुआ था। अत: माघ कृष्ण 13 (गुजराती पौष वदी 13) सोमवार तारीख 21-1-74 को प्रात: 09.00 बजे पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की मंगल उपस्थिति में आमंत्रण-पत्रिका लिखने का शुभ मुहूर्त रखा गया है।

इसी अवसर पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करने के अधिकारी सौधर्म इंद्रादि 16 इन्द्रों की बोली (उछामणी) भी होगी।

इसके अतिरिक्त प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति की जनरल मीटिंग तारीख 20-1-74 को रात में 8.00 बजे रखी गई है।

अत: निवेदन है कि इस शुभ अवसर पर आप साधर्मी भाई-बहिनों सहित अवश्य पधारें।

मंत्री

प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)